चतुर्थ अध्याय

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में स्त्री संवेदना

साहित्य की जमीन पर नासिरा शर्मा का किसानी मन भले ही कहानी लेखन से प्रारम्भ हुआ हो किन्तु उपन्यास विधा पर गहरी पकड़ होने के कारण अधिक सफलता उन्हे उपन्यासों में प्राप्त हुई। इसका मुख्य कारण यह कि लेखिका जीवन को एक अंश में देखने से ज्यादा बल सम्पूर्ण जीवन को जीने में मानती है। लेखिका एक चने के दो दाल की अलग-अलग रूपों में व्याख्या करने की पक्षघर नहीं हैं बल्कि दो दालों से युक्त साबूत चने को ही वे अपने उपन्यास साहित्य में विश्लेषित करने की कोशिश करती है। इसलिए नासिरा शर्मा के साहित्य की सुव्यवस्थित व्याख्या तभी हो सकती है जब उनको 'नारी-विमर्श' के संकुचित दायरे से ऊपर उठाकर सम्पूर्ण 'नारी संवेदना' के रूप में देखा जाय। यदि हम 'संवेदनात्मक स्वरूप' से अवलोकन करें तो उनके सभी उपन्यासों मे 'नारी-मन' पर बात होती नजर आती है। आधुनिक युग में साहित्य पुरातनता के रूढ़िता से मुक्त नवीन धरातल की खोज कर रहा है। जिसमें टेक्नॉलाजी वैश्वीकरण, भूमण्डलीकरण, बाजारी करण एवं संवेदनात्मक परिवेश पर ज्यादा बल दिया जा रहा है। उसी की एक कड़ी को आगे बढ़ाती हुई नासिरा शर्मा भी मुख्य-धारा में अपना योगदान दे रही है।

आधुनिक काल में हिन्दी साहित्य का बहुमुखी विकास हुआ है। अपने विकास के साथ ही हिन्दीने आधुनिक हिन्दी साहित्य में विभिन्न विधाओं को भी जन्म दिया है। नये विधाओं में 'उपन्यास' विधा स्थान सबसे ऊपर माना गया है। उपन्यास विधा को गद्य का 'महाकाव्य' माना जाता हैं, जिसमें सम्पूर्ण जीवन को अंकित करने की शक्ति होती है। इसी कारण वह आधुनिक हिन्दी साहित्य की केन्द्रीय एवं सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। उपन्यास में मानव-जीवन के गहरे भावबोध, विशिष्ट दर्शन, मानव-

मूल्य, मानव-संवेदना, और वर्तमान समस्याओं का समग्र रूप से चित्रण होता है। इस विधा ने मानव जीवन के विविध अंगो का उद्घाटन किया है। पूर्ववर्ती युग में कथात्मक कृति को उपन्यास की संज्ञा देकर पारिभाषित किया जाता है।

हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा में अनेक मोड़ दिखाई देते हैं। प्रेमचन्द पूर्व युग में यह उपदेशात्मक एवं मनोरंजन प्रधान विषयवस्तु को लेकर आगे बढ़ता है। प्रेमनचन्द्र युग में उपन्यास मानव जीवन को जोड़कर अपनी महता पूरी करता दिखाई पड़ता है। आगे चलकर उपन्यास विधा ने समाज, राजनीति, नगर, ग्राम, विज्ञान मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण आदि विषयों को अपने में समेटने का प्रयास किया है। इस विधा को प्रतिष्ठित करने में प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह, चतुरसेन शास्त्री, उपेन्द्रनाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र, यशपात्र प्रभाकर माचवे, फणीश्वर नाथ, राजेन्द्र यादव, विवेकी राय, मन्नू भण्डारी, ऊषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती जैसे कई उपन्यासकारों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही इसके विकास में महिला लेखिकाओं की भी अपनी उज्ज्वल परंपरा रही है। इनमें नासिरा शर्मा अपना अलग स्थान रखती हैं जो उनके पारखी दृष्टिकोण के कारण संभव हुआ है। उन्होनें साहित्य क्षेत्र में कहानियों के जरिए क्यों न प्रवेश किया हो, उपन्यास विधा में ही अपनी विशेष पहचान बनाई है। जिसका प्रमाण' (साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त उपन्यास 'पारिजात' प्रस्तुत करता है।

नासिरा शर्मा के उपन्यासों को समझने के लिए इनका विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचन जरूरी है।

आधुनिक उपन्यास के 'स्वरूप' तथा 'उद्देश्य' के विषय में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों में मतैक्य नहीं है। आधुनिक हिन्दी उपन्यास के आन्तरिक और बाह्य स्वरूप पर पाश्चात्य उपन्यास साहित्य तथा विचारात्मक आन्दोलनो का भी

पर्याप्त प्रभाव मिलता है। उपन्यास के स्वरूप पर चर्चा करते हुए डॉ. प्रताप नारायण टंडन का कहना है-

"आज के उपन्यास इतने जटिल और विस्तृत अनुभव क्षेत्र को आत्मसात किये हुए हैं कि उसके स्वरूप का स्पष्टीकरण बहुत निश्चित अर्थों में कर सकना सरल नहीं है।"[1]

उपन्यास का आरंभिक रूप हमें मानव की दो संवेदनाओं 'भय' और 'प्रेम' पर आश्रित मिलता है। 'भय' तथा 'प्रेम' पर विजयश्री प्राप्त करने की उदाक्त भावना ने साहसिक एवं जिम्मेदाराना उपन्यासों को जन्म दिया तथा प्रेम भावना ने प्रेम-कथा या 'प्रेम--रीति से सम्बन्धी नवलकथा का सूत्रपात्र किया।

हिन्दी गद्य विद्याओं में 'उपन्यास' का परिवेश इतना बड़ा है कि अधिकांश परिभाषाओं में इसके स्वरूप की आर्थिक, व्याख्या ही संभव हो सकी है। उपन्यास की परिभाषा के संदर्भ में इसलिए विभिन्न दृष्टि से की गई व्याख्याओ को ध्यान में रखना आवश्यक है। क्योंकि संपूर्णात्मक न होते हुए भी वे अपने-आपमें महत्वपूर्ण और अलग-अलग रूप से उपन्यास के विविध पक्षों तथा तत्वों से संबंधित है।

उपन्यास की परिभाषा देते हुए डॉ. गुलाबराय लिखते है- "उपन्यास कार्य कारण श्रृंखला में बचा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रक्षात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।"[2]

डॉ. श्यामसुन्दर दास लिखते है-

"उपन्यास की कोटि में साधारणता कल्पना प्रसूत वह संपूर्ण कथा-साहित्य आ जाता है, जो गद्य की रीति से व्यक्त किया गया हो।"[3]

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द' ने -

चित्रात्मकता की दृष्टि से मानव-चरित पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व माना है।" (4)

हिन्दी उपन्यासकारों में ज्यादातर लेखक अपने उपन्यासों में जीवन की वास्तविकताओं को रूपायित करते हुए उसके उदाक्त रूप को ही चित्रित करने की कोशिश किए हैं।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने- उपन्यास को हिन्दी साहित्य के लिए एक नई वस्तु माना।"[5]

उपरोक्त परिभाषाओं में मानव जीवन के यथार्थ चित्रण, जीवनानुभवों का विवेचन और जीवन के सांवेदिक मूल्यों के आकलन तथा लेखन की संवेदनात्मक दृष्टि को महत्व दिया गया है।

हिन्दी साहित्य के ज्यादातर उपन्यास सामाजिक वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि सामाजिकता की प्रवृत्ति उपन्यासों में प्रधान रूप से मिलती है। सामाजिक उपन्यासों के बारे में त्रिभुवन सिंह लिखते हैं-

"सभी उपन्यासों में सामाजिक तत्व का पाया जाना अनिवार्य होता है। इसके अभाव में उपन्यास साहित्य अपनी उपयोगिता ही खो बैठेगा। ऐसी स्थिति में यह कहना कठिन है कि कौन-सा उपन्यास सामाजिक नहीं है।"[6]

इसी सामाजिकता के अर्न्तसंबंधो के जाल का ताना-बाना बुनती लेखिका नासिरा शर्मा ने तमाम स्त्री विमर्शकारों में अपनी अलग पहचान रखती है। इसका मुख्य कारण यह है कि वे किसी विमर्श को सामने रखकर साहित्य सर्जना नही करती वरन् समाज में व्याप्त विमर्शो यथार्थ को मर्यादित तरीके से इशारों में अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं जो उनके निम्न' उपन्यासों में निहित है-

सात नदियाँ एक समुन्दर उपन्यास में स्त्री संवेदना

यदि नासिरा शर्मा को यथार्थवादी दृष्टिकोण की पूर्ण हिमायती के रूप में रखकर सात नदियाँ एक समुन्दर' उपन्यास का विश्लेषण किया जाय तो यह उपन्यास 'ईरान' में चल रहे तीस वर्षों के क्रान्ति का एक रिपोर्ट मात्र साबित होगा। जिसमें ईरान के लोगों ने 'शाही' को हटाकर' 'खुमैनी' के शासन को सत्ता में वापिस लाया किन्तु लोगों की स्थिति उनके सपने सब टूट गये कारण की 'शाह' के शासन से भी ज्यादा जनता पर अत्याचार 'खुमैनी' काल में प्रारम्भ हो गया। बहरहाल लेखिका की पैनी दृष्टि में उपन्यास ने संवेदनात्मक उपन्यास का आकार इसलिए ग्रहण कर पाया क्योंकि इसमें नारी संवेदना का पुट ही नहीं बल्कि पूरा सागर उछाल दिया गया है। वह सागर वो नही बल्कि इस उपन्यास की सात पात्र- 'तैय्यबा ' 'महनाज', 'सूसन', 'सनोवर', 'अख्तर', 'मलीहा 'परी' रूपी सात संवेदनात्मक सागर हैं जिनके, निजी जीवन से प्रारंभ हुई संवेदनाएँ उपन्यास के अन्त तक उस क्रूर राजनीति को भी अत्यधिक प्रभावित करती हैं जिसका दर्द 30 वर्षो से ईरान 'शाह' और खुमैनी के रूप में झेल रहा था। इन सातों स्त्रियों की मुख्य भूमिका एवं प्रतिनिधित्व ने ही उपन्यास को रिपोर्ताज होने से बचा रखा है।

इस उपन्यास' की भूमिका के 'दो शब्द' में लेखिका ने लिखा है-

"इस उपन्यास के सारे प्रमुख चरित्र औरते हैं। औरत की स्थिति को लेकर ही मैंने कलम उठाया है। दिलचस्प बात यह है कि वह औरत जो पिछली व्यवस्था में प्रताड़ित थी आगे बढ़ी व्यवस्था बदली तो वह पहले से अधिक बुरी दशा झेलने को बाध्य हुई। आज फिर वह मुक्ति आन्दोलन में आँख बंद करके कूद पड़ी है। अंजाम..? बदलाव आयेगा ऐसा विश्वास है। इन्सानियत की बेड़ियाँ टूटेंगी, वह मुक्त होगी"[7]

लेखिका ने नारी मुक्ति की कामना को सफल होने की जो आशा 'दो शब्द' में रखी है उसका बीजारोपण उपन्यास के प्रारंम्भ में ही दिखाई पड़ता है। इस उपन्यास का आरंभ ही आशा, निराशा, डर, आत्मविश्वास आदि सांवेदिक भावों से हुआ है। उपन्यास के शुरुआत से ही 'फालगीरन' कहवे की तलछट देखकर सातो लड़कियों के भाग्य का निर्धारण करती है।

अपने-अपने बारी का सब इन्तजार करते हुए शंका-आशंका खुशी-गम, आदि जीवन एवं भविष्य को लेकर कल्पनाएँ परिकल्पनाए करती हुई हाथों की रेखा दिखा ही रही थी अचानक 'फालगीरन' ने तैय्यबा का भविष्य देखने के लिए हाथ बढ़ाया तो तैय्यबा उसे मना करते हुए कहती है- "मेरा भाग्य इतना आसान नहीं है पढ़ना। उसकी भाषा तुम्हारे लिए अनजान है। मेरा भाग्य मेरा कदम है न कि कहवे का तलछट । तैय्यबा ने उकताए लहजे में कहा।"[8]

इस उपन्यास के प्रकाशन वर्ष (1984) को देखा जाय तो सिद्ध होता है कि यह वह दौर है जब महिलाएँ घर, पति, संतान, भाग्य एवं जीवन में खुशियाँ किस तरीके से बनी रहे का सपना संजोती है, इसके उत्तर लेखिका 'तैय्यबा' के माध्यम से नारियों में यह भाव जागृत करने का सफल प्रयोग सम्पन्न कराने की कोशिश करती है कि स्त्री हमेशा भाग्य का रोना नही रोयेगी उसे अपने पर विश्वास करना होगा। अपने कर्मो से फल प्राप्त करके 'माफलेषुकदाचन्' के उक्ति को चरितार्थ करना है।

लेखिका नासिरा शर्मा ने सात वर्ष तक ईरान में रहकर वहाँ के 30 वर्ष की भयानक खुनी क्रान्ति को अपनी आखों से देखा, महसूसा और जिया है। नारी संवेदना की यथार्थ अभिव्यक्ति को फलीभूत करने हेतु उन्होंने खूनी संगीनों की परवाह न कर बड़ी दिलेरी और साहस के साथ इसे पृष्टों पर अंकित किया है। इस बात की परवाह

किये बगैर की उसकी भी हालत उपन्यास की चट्टान वादी, मार्कसवादी 'तैय्यबा' जैसी हो सकती है।

यह उपन्यास तेहरान विश्वविद्यालय में पढ़ने वाली सात सखियों की कहानी है। सातों छात्राएं संवेदना के साथ आयाम को धारण कर जीवन के व्यष्टि को समष्टि की ओर प्रवाहित करती है इस प्रवाह में इन सब की जिन्दगी क्या से क्या हो गयी ? 'परी' ईरान से बाहर चली गई। 'महनाज' जर्मनी में रहने लगी, अख्तर शहादत के कारण मार दी गयी। सनोवर की मृत्यु 'ब्रेन हैमरेज' के कारण हुयी, तैय्यबा को गोली से मार दिया गया। मलीहा और सूसन बड़ी कठिनाई के साथ जीवन जी रही हैं ।

'तैय्यबा' एक राईटर के साथ-साथ एक मार्कसवादी कार्यकर्ता भी है, उसके अलावा उसकी सभी सहेलियों नें परंपरागत नारी जीवन जीने की कला को स्वीकार लिया है। 'तैय्यबा' के अलावा शेष छः सहेलियों नें स्त्री जीवन के रास्ते पर चलना कबूल किया "आज सिजदे बदर का दिन है, कोई भी घर पर नहीं है। अपशगुन जो माना जाता है। नौरुज के लिए जो गेहूँ गहरी तस्तरी या प्याले में बोते हैं, उसे उठाकर जंगल में फेंकने जाना होता है। यह सब सोचकर तैय्यबा को हँसी आती है। इस दिन लड़कियाँ घास में गिठा बाँधकर अपने भावी पति को पाने की मनोकामना करती है। कुछ शहरों में विशेषकर छोटे शहरों में लड़किया चाबी गिरा देती थी। जो सुबह उसे पा लेता था वह उस लड़की से विवाह कर लेता था ऊपर से यह केवल रस्म थी मगर दो चाहने वालों के लिए एक मुक्त अनुबंधन होता था जो सामाजिक रस्म अदा करके मान लिया जाता था।"[9]

लेखिका इस उपन्यास में उल्लिखित नारी संवेदना के उन दोनो पक्षों का वकालत करती है जिसे उसके चरित्रों ने धारण करना चाहा है। परंपरागत स्त्री जीवन

जीने वाली लड़कियों की संवेदना को भी उन्होने उतना ही तवज्जो दिया है जितना बौद्धिक, सामाजिक ज्ञान से लैस छात्र 'तैय्यबा' को दिया है ।

क्रान्ति के इस भयानक झंझावातों में सातों सहेलियों पर जो गुजरी है उसी का बयान है यह उपन्यास। विश्वविद्यालय का परिणाम आने के बाद कुछ विधार्थी अनुसंधान करने जाते है। कुछ तेहरान विश्वविधालय में ही पी.एच.डी में नामांकन कराते है ।

समाज में कोई भी परिवर्तन हो सकारात्मक या फिर नकारात्मक । कोई युद्ध हो या क्रान्ति सबसे अधिक प्रभावित स्त्री ही होती है। किसी क्रान्ति या युद्ध का कारण पुरुष या अन्य भले हो किन्तु सबसे अधिक पीड़ा और यंत्रणा स्त्री को ही उठानी पड़ती है। 'सात नदियाँ एक समुन्दर' उपन्यास के अन्दर एक नहीं सात-सात स्त्रीयों की संवेदनात्मक कथा-व्यथा प्रस्तुत है।'तेहरान' विश्वाविद्यालय में अध्ययनरत सात छात्राएँ अपने अध्ययन के आखिरी पड़ाव पर पहुँचकर कुछ भविष्य के सपनो में आधी डूबी हुई हैं, कुछ भविष्य की चिंता में आशंकित एवं आतंकित घबराई हुई। नारी के जीवन से संबंधित संवेदना का सशक्त दस्तावेज यह उपन्यास है इस मान्यता को चरितार्थ करने हेतु 'सातों छाताओं के जीवन' से संबंधित कथावस्तु का विश्लेषण किया जाना आवश्यक है जिससे संवेदना का पक्ष उजागर हो सकेगा ।

तेहरान विश्वविधालय में अध्ययनरत सातों सहेलियों में से पहली 'महनाज' है। महनाज सबसे ज्यादा सुन्दर थी। सुन्दरता के साथ-साथ उसके अन्दर अभिमान और घमण्ड रूपी दो तोहफ़े भी थे। आर्थिक रूप से 'महताज' के पिता काफी सम्पन्न व्यक्ति थे, इसलिए एम.ए. प्रथम श्रेणी में पास होने पर वे 'महानाज को 'डायमंड रिंग' तोहफे में देते हैं। असलम अतापोर और महनाज एक दूसरे से प्रेम करते है। इसी सिलसिले में असलम अतापोर एक दिन महनाज के पिता से मिलने आये थे किन्तु बात नही हों सकी । और महनाज की मंगनी अख्तर मिर्जा के बेटे सुलेमान से तय हो

रही थी। इसी बीच असलम अतापोर को 'कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय' में पी० एचडी करने के लिए एडमीशन मिल गया। असलम अनमने ढंग से अनुसंधान करने चला गया। ईरानी क्रान्ति की धधकती ज्वाला ने इसी बीच महनाज के पिता की जान ले ली। महनाज के सर के ऊपर से पिता की छत्र-छाया क्या उठा उसके साथ ही उसका प्रेम भी मात्र एक स्मृति बनकर रहा गया.. क्योंकि असलम अतापोर का इस दौरान कोई पत्र भी नहीं आया 'महनाज' किस आधार पर अपनी माँ से कहे कि वह 'सुलेमान' से शादी नहीं करना चाहती है। हालात से उसने समझौता कर लिया। उसकी किस्मत देखिए कि जब वह सुलेमान के बच्चे की माँ बनने वाली होती है तब जाकर उसकी पिछली जिन्दगी का जवाब मिलता है। असलम छुट्टीयों में घर आया हुआ था तब उसे मालूम हुआ कि असलम के खून के एक-एक बूँद में महनाज समाई हुई थी। उसकी धड़कन की आवाज उसके विचारों का केन्द्र था परन्तु सच्चे प्रेमी कब मिलते हैं ?

सुलेमान कभी भी महनाज पर शक नहीं करता बल्कि वह असलम अतापोर की कविताओं की तारीफ करता है और कहता है कि मेरे 'टेक्निकल दिमाग' में कविता उतरती ही नहीं। किन्तु असलम महनाज को बेवफा समझता है। एक दिन सुलेमान असलम अतापोर से महनाज को मिलाने ले जाता है और कहता है कि आपकी कविता की दीवानी आपसे मिलना चाहती है। बरसों बाद जब वे एक दूसरे को देखे तो उन दोनों के दिलों मे एक तूफान सा उठा सारी यादें दिल के दरवाजो को जैसे तोड़कर बाहर आ गयी। "मैने अपने वजूद को पिघलाकर बूँद-बूँद टपकाकर तुम्हारे साथ जहनी फिजा बनाई थी। आज मेरे पास सब कुछ है घर, बच्चे, शौहर, बस परवाज की कमी है। तुम मेरे विचारों के पंख बने थे और मै मैना बनकर उस नीले आकाश पर जब तक चाहती पंख फैलाकर उड़ती रहती थी।"[10]

लेखिका नासिरा शर्मा ने इस जगह दो प्रेमियों के मिलने पर जो संवेग उमड़ता है उसको उठने दिया क्योंकि यह प्राकृतिक मूलप्रवृत्ति है किन्तु सुलेमान की विवाहिता होने के कारण महनाज और असलम अतापोर के मध्य मर्यादा का खण्डन नहीं होने दिया है।

इस उपन्यास में स्त्री संवेदना को जागृत करती दूसरी पात्र सूसन है। जिसकी शादी असद से हो जाती है। महनाज के जीवन में जहाँ प्रेमी और पति दोनो त्याग एवं बलिदान की पराकाष्ठा प्रस्तुत करते हैं' जिससे नारी मन दोनो के पवित्र मन को समझ पुरुष के प्रति सदासयता ज्ञापित करती है वहीं सूसन शादी के कुछ दिन व्यतीत होने के बाद ही समझ जाती है की उसकी और असद की जिन्दगी रेल की दो पटरियों की तरह है जो साथ तो चल सकती है किन्तु एक नही हो सकती कारण कि, संबंधों के पुल के नाम पर बच्चे भी नहीं थे। असद के फर्म में एक तलाकशुदा औरत थी। असद उसपर जान निछावर करता था। अतः सूसन ने उसे तलाक दे दिया किन्तु सच्चाई असद से पूछने के बाद।

असद-कहता है कि-"मैं उसका दीवाना हो गया हूँ। मुझे स्वयं नहीं पता है ऐसा क्या हुआ? तुम्हारे साथ रहकर भी उससे दूर रहना मेरे लिए कठिन है इसलिए मजबूरन उससे शादी करना तय कर लिया है वह बिना तलाक के विवाह पर राजी नहीं है"।[11]

सूसन सोचती है- असद और उस लड़की का ईश्क मेरी और इमरान की आपसी पसंद और झुकाव से कहीं ठोस और जोरदार है। मैं जिन्दगी को खेल समझे थी। आज न अपना ईश्क अपने पास है न अपना शौहर, जुए में दोनो को हार बैठी हूँ।"[12]

लेखिका इन संवादों के माध्यम से नारी संवेदना के विभिन्न पक्षों को उजागर करने की सफल कोशिश करती है- परी कहती है "क्या कुछ भी उम्मीद नही रही आगे..? घर का टूटना औरत के लिए सबसे तकलीफ देय अनुभव होता है"।[13]

आज स्त्री विमर्श परक तमाम लेखिकाएँ भले ही परिवार एवं पितृ-सत्ता के विरोध में नारेबाजी करती हों किन्तु नासिरा शर्मा, मन्नू भण्डारी इस तथ्य की हिमायती हैं, कि किसी भी कीमत पर संबंध विच्छेद की नौबत न आए।। कारण कि "धरती ही हमारे जीवन का यथार्थ है, हमारे जीवन का सत्य है वह चाहे कांटों भरी हो या फूलों भरी, हरी-भरी हो या पथरीली। कुछ देर के लिए भले उसे छोड़कर ऊपर चढ़ जाओ पर अन्त में तो आना वहीं पड़ता है।"[14]

परी की बात सुनकर तैय्यबा कहती है-

"इसीलिए मैं कहती हूँ, शादी की रस्म ही एक अभिशाप है वहीं से वास्तव में औरत का पतन और शोषण आरंभ होता है। सारी जिन्दगी अपना कौमार्य सहेज कर रखो कि यह पतिधन है मगर उस तपस्या का फल क्या मिलता है ? परी की भाषा में तिरस्कार, विश्वासघात, अनादर, वास्तव में हमारा स्थान समाज में क्या है, इसे हमें समझना पड़ेगा"।[15]

लेखिका तैय्यबा द्वारा इस कठिन निर्णय रूपी संवाद की अभिव्यक्ति करा तो देती ह परन्तु दूसरी पात्र परी से इसके गहरे अनुभव पर भी प्रकाश डालने की कोशिश करती है। परी ने बीच में ही तैय्यबा की बात को काटकर कहा- "अहसास यदि इतना ही प्रयोगात्मक व तथ्यपूर्ण विषय बन जाय तो फिर वह अहसास कहाँ रह जाता है। अहसास के धरातल पर जब कुछ चिटखता है और टूटता है तो उसको जोड़ने के लिए अकल की गोंद भी बेकार होती है।"[16]

सूसन और असद का संबंध विच्छेद हो गया। तलाक तीन महीने गुजरने के बाद सूसन ने दूसरा विवाह करने का निर्णय लिया । आखिर उसकी गलती क्या है जो वह अपनी जिन्दगी खराब करे उसका प्रेमी भी नहीं मरा है कि वह उसकी याद में सारा जीवन गुजार दे ? सीढ़ी का एक पाया टूटा हो तो क्या सीढ़ी नही चढ़नी चाहिए जो बिगड़ गया उसे भूलकर भी तो जिया जा सकता है ? और सूसन अब्बास आगा

से दूसरी शादी करने की हामी भर दी। तब सूसन एक स्त्री की 'स्वाभाविक मनःस्थिति की भांति सोचती है - "जो पसंद था वह समय के कोहरे की चादर मे विलीन हो गया। जो पति मिला वह छोड़ गया। अब जो नापसंद था वह पसंद भी आ सकता है। इंसान का दिमाग बदलता रहता है। दुनियाँ में कुछ सच नहीं है सब झूठ है अब मै झूठ को गले लगाना चाहती हूँ देखूँ यह अनुभव कैसा रहता है।"[17]

लेखिका ने यह स्पष्ट रूप से उजागर किया है कि रिश्तों की डोर केवल बौद्धिकता सामाजिक प्रतिष्ठा, या स्व के प्रेम को देखकर ही नहीं किया जानी चाहिए बल्कि उसकी परख जमीनी स्तर पर होनी चाहिए।

उपन्यास की तीसरी महीला पात्र मलीहा है। मलीहा का विवाह हुसैन नाम के लड़के से होता है। वह इंग्लैण्ड से डिग्री प्राप्त किया हुआ था जिसकी ईरान में बड़ी माँग थी। शादी के बाद मलीहा इंग्लैण्ड चली गई किन्तु एक वर्ष में ही उसके पति हुसैन ईरान लौट आए। मलीहा भी पति के साथ फिर उन्हीं पुरानी गलियों में आ बसी। हुसैन मुजाहिद था ऐसा आरोप लगाकर पुलिस ने उसे जेल में बंद कर दिया। दो वर्षो तक खबर नही मिली की हुसैन किस जेल में हैं ?

कई वर्षों बाद जेल से कैदी छोड़े गये किन्तु उसमें हुसैन नही रिहा हुआ। बाद में मलीहा को पता चला हुसैन मुजाहिद था, वर्तमान सत्ता का विरोधी। हुसैन की सारी डिग्रियाँ एवं कागजात पासदार अपने साथ उठा ले गये। खुशी के दिनों में जिन वस्तुओं से घर का साज होता है, हीरे, मोती, सोना-चांदी, कीमती सामान सब मलीहा का छीना जा चुका था। वह कभी ऐसी कल्पना भी नहीं की थी की भविष्य उसको ऐसा दिन दिखाएगा कि वह खुद को इतनी दीन-हीन और लाचार समझ बैठेगी । एक दिन एक जेल का कर्मचारी आकर मलीहा को दिलासा देकर चला जाता है कि अब उसे किसी भी प्रकार की प्रताड़ना नहीं मिलेगी और जल्द से जल्द तुम्हारे पति को

खोज लूंगा। अजनबी के चले जाने पर वही आईने के सामने अपना चेहरा देखती है और हैरान रह जाती है कितने कम दिनोने मै इतनी बूढ़ी हो गई हूँ।

पति को जेल हो जाने के बाद मलीहा घर का एक-एक सामान बेचकर अपने बच्चों का पेट पात्रती है। लेखिका ने मलीहा को परंपरागत नारी के रूप में ममतामयी वात्सल्य संवेदना के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे लेखिका 'मलीहा' नामक चरित्र के सामने खुद भी चुप्पी साध ली हो और उसे उसके हालात पर छोड़ दिया हो ।

'परी' इस उपन्यास की चौथी संवेदना है। इसकी सौतेली माँ जो परी के पिता की स्टेनो थी एक दिन दिल का दौरा पड़ने से मृत्यु को प्राप्त होती है। इसके पिता अपनी पहली पत्नी को वापस लाने के बजाय तीसरी शादी कर लेते हैं। यह बात परी को रास नही आायी । परी अपने बाबा की मर्जी से विवाह कर लेती है किन्तु उसके पति की आदतें अच्छी नहीं थी। उसका पति पहले से ही पर स्त्री गमन का आदी था। गोरा बदन और गैर की संडिले देखना उसकी मजबूरी बन गई थी। सफेद शरीर उसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी। सफेद शरीर तो परी का भी था किन्तु उसका मानना था कि परी मेरी पत्नी है। मैं उसका हाथ कभी भी पकड़कर उसको हाँसिल कर सकता हूँ। इस अत्याचार को परी चुपचाप सहती रही। पति पर कोई कटाक्ष किए बगैर पत्नी की चुप्पी भरी तिरस्कार खालिद को तह तक कुरेदने लगा। एक दिन उसने परी से कहा कि वह जिस्मों के जाल में फँस गया है उसे इन चीजों से मुक्ति चाहिए। परी के बारे में जानकर तैय्यबा कहती है- "कुछ रिश्ते ऐसे भी होते हैं जिनका कोई नियम नही वह बनने से पहले ही टूट जाते हैं क्षणिक होते हैं। इतने कम समय का क्या नियम बनाया जा सकता है? हर रिश्ते से कुछ मिलने की तमन्ना करना केवल एक स्वार्थ है। तैय्यबा बोली।"[18] नासिरा शर्मा ने तैय्यबा और परी के बीच प्रश्नोत्तरी के माध्यम से एक ऐसा संवाद कराया है जिसमें नारी मन एवं स्त्री-पुरुष के बीच टूटते

संबंधों, समाज की दोगली नीति जिसे मर्दों ने बनाया है का भेद खुलता है। परी तैय्यबा से पूछती है-

“जो ऐसी तमन्ना नहीं करते, वह क्या होते हैं ?"

“महास्वार्थी ?”

“उनकी कोई संजा?” परी ने दूसरा प्रश्न किया

"वह तुम दे रही है। तैय्यबाने सिगरेट जलाते हुए कहा”

“तुम्हारा समाज, जिसके लिए तुम जीती-मरती हो, वह ऐसे लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करेगा ? कानून की बात मुझे पता है । वह मत बताना, क्योंकि.... समाज मर्दो का है, इसलिए वह इस सबके बावजूद स्वतंत्र है। "फिर औरत पर सारा आक्रोश, सारा आरोप, सारा कानून क्यों लादा जाता है? "इसलिए कि इस मर्द समाज के भ्रष्टाचार को सहारा देने वाली उसकी भागीदार औरत है ।[19]

“फिर तुम अपने को किस कोटि में रखोगी ”[20]

“मेरी कोटि इस समाज के लिए नई है। जब हम विवाह नहीं करते तो विवाहित पुरुष भी हमारे आकर्षण का केंद्र नहीं होते। यह सितम तो एक ही वर्ग की औरत दूसरे पर करती है। औरत स्वयं को कब पहचानती है। यदि मर्द उसे गम्भीर रूप से नही लेता तो इसमें उसका क्या दोष”?[21]

एक दिन 'खालिद' परी से बोला ईरान के हालात अच्छे नहीं हैं। ईरान को छोड़ने हेतु प्रति व्यक्ति पचास हजार खर्च आयेगा। वे लोग कुछ कीमती जेवर और पैसे लेकर पेरिस चले गये। पेरिस पहुँचकर परी को बहुत सुकुन मिला। वहीं उसके बच्चों की शिक्षा प्रारंम्भ हो गयी। कुछ ही महीनों में परी को पता चला की 'तेहरान' का उसका घर लुट गया तो वह फूट-कर रोने लगी। खालिद उसे समझाता है-

बेकार के चीजों के लिए आँसू मत बहाओ । मै पत्थर थोड़ी हूँ, जो दिल पर चोट न लगे, आँसू न निकले मेरे कितने घर है ?एक ही तो घर था। घर का लुटना,

घर का टूटना, घर का तबाह होना खालिद क्या जाने ? उनके सीने में मद का दिल है। औरत घर से कितनी जुड़ी होती है, यह मर्द नही समझ सकता।"[22]

अपने बच्चों से मिलकर परी खालिद से कहती है- "आज कम से कम वर्ष-भर बाद मैं सुख की नींद सोऊँगी, मेरा अपना संसार मेरी अपनी बाहों में आ गया है।"[23]

लेखिका ने खालिद का हृदय परिवर्तन बड़े सदासयता से प्रस्तुत किया है। तमाम भटकन के बाद जब खालिद की घर वापसी होती है तब वह सम्पूर्ण समर्पण के साथ परी का होता है। परित्याग न करने का कारण खालिद से उत्पन्न संताने थी। एक औरत तब हार मानती है जब उसके जीवन में सेतु रूपी संताने होती हैं। वह तभी अत्याचार सहने के लिए बाध्य होती है। हारने की वजह का इसी प्रकार जिक्र कामायनीकार ने 'लज्जा' सर्ग में उद्धृत किया है-

"यह आज समझ तो पाई हूँ,
मैं दुर्बलता में नारी हूँ।
अवयव की सुन्दर कोमलता,
लेकर मैं सबसे हारी हूँ"॥ [24]

परी का इतना छोटा संसार जो उसकी बाहों में समा सकता है को देखकर खालिद सोचता है- "सुख की बात है। औरतों का संसार इतना छोटा है कि वह सचमुच बाहों में समा जाता है मगर मर्द का संसार"[25]

पाँचवी सहेली अख्तर है। अख्तर बदसूरत है पर मर्द की भूख वैसी ही तेज है उसमे, वह क्रान्ति में कूद पड़ती है और जी भरकर मर्दो को भोगती है पर किसी से जुड़ न सकी। शायद मर्द के स्पर्श की भूख इतनी थी कि वही उसके अहसास की मांग बन गई लेकिन क्रान्ति के प्रति वह सच्ची रही। लेखिका बदसूरत और खूबसूरत में जो फर्क किया है वास्तव में अख्तर ने उस विधान को तह से तोड़ा है और अपनी क्रान्ति की सच्ची खूबसूरती प्रस्तुत की है।

अख्तर कॉलेज के ही दिनों से क्रान्ति में शामिल थी। पाँकेट में संदेश बाँटने का कार्य उसी का होता था। पूरे ईरान का कायापलट वह करना चाहती थी। वही पुरानी तस्वीरें वही नाम उसको सहन नही होते थे। अपनी क्रान्ति को गति देने के लिए उसने काफी लड़कियों की एक टोली बना ली थी। वैसे देखा जाए तो वह एक पारखी लड़की थी, जिसे एक नौजवान लड़के की तलाश थी, मगर उसके भावनाओं और जज्बातों की बाढ़; जब भी सीमा से बाहर उमड़ने की कोशिश करते थे, तब-तब उसकी कुरुपता उसके मन को निराशा के गर्त में झोंक देती थी। वह लाख बदसूरत थी किन्तु खूबसूरती की दीवानी थी। उसका मानना था कि जब बदसूरत मर्द खूबसूरत पत्नियों के पति बन सकते है तो एक बदसूरत पत्नी का खूबसूरत पति क्यों नहीं हो सकता ?

"कटु चाहे कितना ही हो पर यह सत्य ही है कि सबकुछ पाकर भी पुरुष के अभाव में नारी अपूर्ण ही है।"[26] राजेन्द्र यादव और भन्नू भण्डारी द्वारा लिखित उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' में भी औरत, मर्द की आकांक्षी है। नासिरा शर्मा ने अख्तर के जीवन की शून्यता को जिस रूप में विश्लेषित किया है संकेतों के माध्यम से वही 'एक इंच मुस्कान' में मुखर हो उठा है- "आजकल अपने जीवन में पुरुष का अभाव मैं महसूस करती हूँ। एक ऐसे पुरुष का जो वहशियों की तरह मुझे प्यार करे...सब चीजों से अलग करके मुझे प्यार करें...केवल मुझे, मेरे इस शरीर को, मन को, आत्मा को"[27] क्रान्ति के प्रति समर्पित अख्तर के जीवन में उसके कर्मनिष्ठा को देखकर अनेक पुरुषों का आगमन और प्रस्थान हुआ किन्तु किसी से विवाह उसने नही किया। उसके जीवन में कहीं भी कस्मे वादे, ऊठना घूमना, आहे भरना नही हुआ, बल्कि जो भी हुआ वातावरण की उपलब्धि के रूप में हुआ।

वह किसी के आगे झुकी नहीं, टूटी नहीं, गिड़गिड़ाई नहीं बल्कि सुन्दर हाथों ने स्वयं आगे बढ़कर उसका आलिंगन किया। शादी के रस्म को उसने अभिशाप माना

और अपना शेष जीवन देश और धर्म के नाम पर दाँव पर लगा दिया तेईस वर्ष की उम्र में शहादत के जुर्म ने 1980 में उसे ईरान ने निगल लिया। कब्र पर लगी तस्वीर उसके अठारवीं वर्षगांठ पर पहने कपड़ों की थी। सभी सहेलियों में अख्तर सबसे दिलेर और भाग्यशाली थी। जीवन से उसने जो चाहा उसे हासिल किया। ऐसी गौरवपूर्ण मौत किसी-किसी को मिलती है।

सनोवर इस उपन्यास की संवेदनात्मक कथावस्तु को आगे बढ़ाने वाली छठवीं कड़ी है। सनोवर की शादी एक एयरफोर्स के अफसर के साथ हुई थी किन्तु बगल में ठहरे मौलवी के कारण शादी ऐसी हो रही थी जैसे किसी की मैयत उठ रही हो। न गाना-बजाना, न शोर-शराबा पासदारों ने आकर संदेश दे दिया था कि रात 10 बजे के पहले शादी की रस्म पूरी हो जानी चाहिए। अत: विवाह में आए कितने मेहमान बिना खाना खाए चले गये थे। एक दिन फोन पर उसे पता चला कि उसका पति शहीद हो गया। 'बुनियाद-ए-शहीद' से वजीफा, मकान सब कुछ उसे मिल सकता था। उसके पति के साथियों की औरतों ने दूसरी शादी भी कर ली थी और जीवन को सहजता से जीना प्रारम्भ कर दिया था। अन्य शहीदों की बीबियों को एक पति के बदले में दूसरा पति, मकान रुपया सब कुछ मिला था किन्तु सनोवर को पति की जान के बदले मे चीजें स्वीकार नही थी।

वह बिल्कुल खामोश हो गई। इसी खामोशी में उसे नींद आ गया और सनोवर सपने में देखती है कि उसे एक ऐसे स्टोर में जाने से रोका जा रहा था जहाँ चारों तरफ गोश्त बिकता है किन्तु वह स्टोर के अन्दर मशक्कत करते हुए प्रवेश कर जाती है। चारो तरफ दुकानें थी, दुकानों पर बोर्ड लगे थे। 'ईरानी शाही गोश्त', 'ईरानी नेशनल फेटमी 'मुजाहिद' 'ईदानी गोश्त' 'इतनी मार्क्सवादी गोश्त शॉप' आदि सब दुकानों पर इंसानी गोश्त मिल रहा था। उसने देखा कई हाथों के साथ उसके पति का भी हाथ बिक रहा था। उसकी शादी की निशानी हीरे की अंगूठी दूर से ही चमक रही

थी अचानक चीखकर वह बेहोश हो जाती है। उसकी स्थिति किस हद तक आतंकित है वह किसी को क्या समझाए।

जयशंकर प्रसाद कामायनी' के आशा सर्ग में कहते है-

"कब तक और अकेले कह दो,
हे मेरे जीवन बोलो
किसे सुनाऊँ कथा कहो-मत,
अपनी निधि व्यर्थ न खोलो"[28]

उसे गहरा सदमा लगा था। थोड़े दिनों में जब सनोवर की तबीयत ठीक हुई तब उसे गोश्त खिलाया जाता है। खाने के बाद जब टेस्टी गोश्त की चर्चा होती है तब 'गोश्त' शब्द सुनकर ही उसे तगड़ा झटका लगता है। 'वर्ड एसोसिएशन' वाले मनोविज्ञान की धारा के आधार पर केवल, 'साईकिक शॉक' से ब्रेन की नस कटकर उसकी मौत हो जाती है। जिस जेहानी समस्या को इस पात्र के माध्यम से दिखाया गया है वह समाज पर एक प्रश्नवाचक चिह्न छोड़ता है। इसका बदलाव होना आवश्यक है। कही न कहीं अलग-अलग रूपों में आज भी यह ग्रन्थि राजनीतिक गलियारों या धर्म के ठीकेदारों में फैली हुई है जिसका निदान होना आवश्यक है।

लेखिका की लेखनी में जिसका सबसे अधिक जिक्र हुआ है इस उपन्यास के निमित्त इसकी सातवीं कड़ी तैय्यबा है।

क्रान्तिकारी तैय्यबा प्रारंभ से ही किसी रूढ़ विचारधारा की समर्थक नही रही है। वह किसी भी परिस्थित में विचलित नही होती थी। वह न तो स्त्रियों के हक की वकालत करती है न ही बेचारगी पसंद उसका स्वभाव है। कई साल पहले एक ट्रक दुर्घटना में उसका छोटा-भाई, माँ-बाप गुजर गये थे। इन परिस्थितियों से वह विचलित न होकर अपने कर्तव्य के पथ पर आगे बढ़ती रही। पहले-पहल वह 'कुरुश' की तरफ आकर्षित होती है। 'कुरुश' नें ईरानी क्रान्ति में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था।

'तैय्यबा' उसके साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही थी। कुरुश का साथ उसे अच्छा लगा अतः वह प्रस्ताव रखी की क्यों न हम शादी कर लें। कुरुश ने जब कहा क्रान्ति के बाद शादी करेंगें तब तैय्यबा ने कहा था कि बूढ़ी होने तक वह इंतजार नहीं कर सकती। कुरुश की प्रेरणा से ही उसने अपने वतन से अर्थात ईरानी क्रान्ति से विवाह कर डाली। अपना पूरा जीवन देश के नाम कर दिया। दोबारा तैय्यबा के जीवन में भावुकता का भटकाव कभी नही आने पाया । तेहरान विश्वविद्या के छात्रों में उसका बहुत आदर था। वह हजारों पुस्तकें पढ़ डाली थी। रूप रंग से तैय्यबा थोड़ी तंग थी किन्तु अखरोटी बालों और बेदाग सफेद बदन के कारण वह आकर्षक लगती थी। उसे अपने भाग्य पर नही अपने जज्बात पर हौंसला और कर्म पर विश्वास था।

'धर्म' और 'कम्युनिज्म' को वह अलग-अलग रूपों में देखती थी। मौलवियों के आचरण से उसे सख्त नफरत थी। जिस क्रान्ति को तैय्यबा हवा दे रही थी उसकी गोपानीयता बनाए रखने हेतु उसके कागजातों को बाथरूम में जलाकर फ्लश कर देती थी ताकि वह पकड़ में न आ सके। उसकी जिन्दगी में विश्राम के लिए कोई स्थान नही था। तैय्यबा भविष्यवादी नही है वह वर्तमान में जीना पसंद करती है। उसने जो पहले जमा किया था उसे उपयोग किया फिर घर की चीजें बेचकर खाया। अंत में जब फ़ांके करने पड़े तब मलीहा की मदद ली। औरतें पासदारों के दुराचारों से गर्भवती न हों इसलिए वह गर्भ निरोधक गोलियाँ बाँटा करती थी। गर्भवती औरतों को पुलिस इसलिए गोली मारती थी ताकी नस्ल ही खत्म हो जाय। पंद्रह वर्ष के जवान को तो मार ही डाला था। तैय्यबा प्रत्येक व्यक्ति की मदद करती थी। एक लुहार की वह मदद करती है पर वही मुखबिर बनकर उसे पकड़वा देता है। वह चाहती तो टर्की या पाकिस्तान के जरिए विदेशों में जाकर रह सकती थी। किन्तु वतन की दीवानगी उसके सर चढ़कर बोल रही थी। पुलिस और जेलर की नज़रों में वह शाह के जामने की वेश्या थी, 'कम्युनिस्टों' की कुतिया थी। उसे लगातार प्रताड़ना देकर उसके साथियों का

पता पुंछा जाता। उसके तलवों पर बिजली के कोड़े लगाए जाते फिर भी देश के प्रति संवेदनशील शेरनी ने अपना मुँह नहीं खोला। उसका पैर सड़ने लगा था। उसे उठने-बैठने में भी तकलीफ होने लगी थीं फिर भी वतन के लिए सहन कर रही थी। अंतिम समय में उसे कुरुश मिलता है। जो एक किताब लिखने के जुर्म में जेल में डाल दिया गया था।

हुसैन, सियाकुश, कामरान, असगर, फरीद, कासिम सब एक दिन जेल में ही एक साथ मिले। उनके बीच हुई आपसी बातचीत को जेलर महोदय रिकार्ड करना चाह रहे थे पर ऐसा हो नही सका । क्रोध में आकर महिला पुलिस कर्मियों ने तैय्यबा के मुँह को चीरकर जीभ खेंची। बालों को ऐसा झिंझोड़ा कि लटें टूट गयी, तैय्यबा ने टेबल से ब्लेड उठाकर अपने सारे बाल काट डाले।

लेखिका नें इस उपन्यास में नारियों के सामने यह प्रश्न उठाया है कि क्या नारियाँ ही नारियों को नहीं समझ सकती ? क्या संवेदना सिर्फ स्वार्थ के दायरों से बनती और बिगड़ती है? या तैय्यबा जैसी स्त्रियों को जन्म लेना ही नही चाहिए। क्या देश के प्रति संवेदनशील सिर्फ पुरुष ही हो सकता है? क्या नारियों की संवेदना सिर्फ नारी स्वतंत्रता, सेक्स, और पारिवारिक भरण-पोषण की चार दिवारी में दम तोड़ देगी? क्या हमेशा- हमेशा जब स्त्री विजेता बनने वाली होगी तब एक मर्द के नाम का नपुसंक आकर उसके मान का मर्दन करेगा ? इस उपन्यास की जीवंत चरित्र तैय्यबा इन सभी प्रश्नों का जबाब बनती है। जब उसके ऊपर अत्याचार करने की पासदारों की सारी कोशिशें नाकामयाब हो गई तब तैय्यबा का बलात्कार करने हेतु एक मर्द भेजा गया। तब भी उसने अपने साथियों के बारे में कुछ नही बताया। बलात्कार हो जाने के बाद- "इतना तिरस्कार! तैय्यबा का रोम-रोम चित्कार उठा। उसके सारे हथियार टूट गये। वह बेदम हो गई, उसकी सारी कोशिशें व्यर्थ चली गई थी।"[29] उसको अपने

शरीर से नफरत होने लगी थी। तभी उस आदमी ने कपड़े पहनते हुए कहा- "हार का दुःख मना रही हो? नहीं, मैं तुम्हारी हार का दुःख क्यों मनाऊँगी भला ?"[30]

"मेरी आत्मा को तुम दागदार नही कर पाये। यह शरीर तो पहले से ही तुम लोगों की दी हुई यातनाओं की सनद बना रहा है। नश्वर है मगर आत्मा नही, आत्मा का स्पर्श तुम कर पाये ऐसा भ्रम केवल पाल सकते हो। कह कर तैय्यबा बड़ी सहजता से खड़ी हुई और उसके मुँह पर थूका ।"[31]

नारी की संवेदना का इतना मजबूत दस्तावेज सात नदियाँ एक समुन्दर उपन्यास की यह पात्र प्रस्तुत करती है जिसका कोई कमजोर पक्ष नहीं है। वह नारी की सोच एवं समृद्धि को, उसकी संवेदनीयता को नारी विमर्श के संकुचित दायरे से ऊपर उठाकर समाज, राष्ट्र एवं जनमानसिकता के विभिन्न आयामों से जोड़ने का कार्य किया। तैय्यबा के इरादें इतने मजबूत हैं कि वह पासकारों के दमननीति का जितनी पुरजोर से विरोध करती है उतनी ही सहनशीलता से अपने देश के प्रति बलिदान हो जाती है। श्री लाल शुक्ल ('बवंडर में फँसे पत्ते' में लिखते है-)

तैय्यबा का अन्त सचमुच ही ऐसा होता है. जिसे जानने के लिए फालगीरन के भविष्य दर्शन की जरूरत न थी । वह जिस क्रान्ति मार्ग पर थी खुमैनी के शासन में उसे देखते हुए पहले से ही समझा जा सकता था कि तैय्यबा का कैसा अन्त होगा॥"[32]

लेखिका नारी संवेदना के उस संवेदनशील पक्ष को उपन्यास उतना विस्तार नही दे पायी जहाँ वह जन-जागृत बन पाती। नारी को उपन्यास के अन्त में लाचारी और उदासीनता ही प्राप्त होती है- अपने को कमरे में तन्हा पाकर तैय्यबा को जैसे होश आया। नग्गा शरीर बिजली के रोशनी में तप रहा था । उसे अपने शरीर से नफरत महसूस हुई बड़ी शदीद नफरत । अन्त में उसे गोलियों से भून डाला जाता है। अपने वतन को अलविदा कहकर उसने अपना प्राण छोड़ दिया। ईरान की क्रान्ति जिन औरतों के बलबूते पर हुई उनकी ही नेता अन्त में ऐसी मार डाली गयी। उपन्यास के

अन्तिम पर्ने हृदय विदारक हैं। मनुष्य इतना क्रूर हो सकता है यह सोचकर हैरत होती है। महुआ माझी न अपने उपन्यास "मैं बोरिशाइल्ला" में आर्मी के द्वारा किए गये महिलाओं पर दुराचार का जिक्र कुछ इसी प्रकार किया है-“अपनी-अपनी पसंद की लड़कियों को ट्रक से ही खींच-खीचकर मौजी उतार लेते और सबके सामने ही उनके रूपडे कार्ड देते। फिर कोई किसी लड़की को लेकर किसी पेड़ के पीछे चला जाता तो कोई किसी को लेकर दीवार की ओट में। उन नर पशुओं के अट्टहास में मासूम लड़कियों और गृहबधुओं की भयार्त चीखों मे दबकर रह जाती। मन-भरकर व्यभिचार करने के बाद लड़कियों को एक बड़े कमरे में बंद करके रख दिया जाता था अपनी-अपनी साड़ियों से दुपट्टों से अन्य कपड़ो से वे आत्महत्या न कर लें, इस डर से उन्हें पूरी तरह नंगा करके रखा जाता था।”[33]

सरजमी किसी भी देश की हो संवेदनाएँ एक समान ही होती है। नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास की कथावस्तु के यथार्थ पक्ष को भंग नही होने दिया है बल्कि अपनी लेखिनी से प्रभावोत्पादक एवं रोचक ही बनाया है।

उपन्यास की कथावस्तु आज भी हर स्थान पर नारी संवेदना में क्रान्ति लाने हेतु प्रासंगिक एवं पूर्ण मौलिक है। युध्ध हो या बदलाव, उससे उत्पन्न संघर्ष में सबसे ज्यादा बलिदान औरतों को ही देना होता है। प्रस्तुत उपन्यास में नासिरा शर्मा ने ईरान की स्त्रीयों का संवेदनात्मक अध्ययन किया है। तभी तो लेखिका इस बिन्दु पर पहुंचती है ।

एक तरफ जहाँ धर्म की उर्वर जमीन स्त्री है वहीं यह भी सच है कि स्त्री का सबसे बड़ा शत्रु धर्म है। सामन्ती कार्यप्रणाली धर्म के द्वारा ही कालान्तर से औरत को अपना गुलाम बनाकर रखती आयी है। सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि धर्म और धर्म के ठीकेदारों ने नारी संवेदना को कभी अभिव्यक्त होने ही नही दिया। उसको मात्र वस्तु बनाकर उसके जज्बातों का गला घोंटते रहे। इस उपन्यास की भी सातों रत्न

खुमैनी के धार्मिक इन्कलाब का शिकार होकर अपने शाख से अलग-थलग बिखर गयी महनाज ने खोये-खोये अन्दाज में कहा- "मेरी सारी सहेलियाँ एक-एक कर छूट गयीं। कौन कहाँ है कुछ पता नही है? दो वर्ष पहले मलीहा के बारे में परी ने कुछ लिखा था। हुसैन लापता है, फिर परी के खत मिलने बंद हो गए। शहनाज, सनोवर, अख्तर और सूसन किस हाल में है कुछ पता नहीं...? तैय्यबा का तो कहना ही क्या...? वह तो उस समय भी खतरों से खेलती थी।"[34]

इस उपन्यास की कथावस्तु आगे बढ़ती है, इसके महिला चरित्रों द्वारा लेखिका ने जितने सवाल नारी संवेदना के पक्ष में खड़े किये हैं; वह थोड़ा भ्रामक सिद्ध होता है। उपन्यास की नारी पात्र भाग्यवादी बने या कर्मनिष्ठ। वे अपने अस्त्रीत्व का आधार किस पर अवलंबित करें? कारण कि जो भाग्यवादी हैं उनका भाग्य अंधकार के गर्त में डूबा हुआ है (अख्तर जैसी पात्रों से पता चलता है) जो कम्युनिष्ठ हैं वे यातनाएँ सहकर देश पर कुर्बान हो रही है पर परिणाम ज्यों का त्यों है । इस रूप में तैय्यबा को देखा जा सकता है। तैय्यबा नही ईरान के कारागारों में बंद सब स्त्रियों की यही दशा है । तैय्यबा के लिए चिंतित मलीहा कहती है या अल्लाह। क्या बनेगा उसका? तो उसे उत्तर मिलता है-

"बनना क्या है? जो सब औरतों और लड़कियों का बन रहा है। बस इतना करना कि उसे गर्भ निरोधक गोलियाँ जरूर देना जो हर माँ और बहन करती है... हमारी औरतों का नसीब... उनकी गंदगी भी अपने में खाली करो.... उनकी गंदगी का बोझ भी उठाओ फिर ताने का बोझ सुनो।"35

विवेच्य लेखिकाने इस उपन्यास में नारी संवेदना के उन तमाम मापदण्डों को स्थापित करने की कोशिश की है जो उसके हित में सवाल उठाते हैं। शान्ति आनी चाहिए, बदलाव होना चाहिए । योगदान पुरुषों का हो या महिलाओं का किन्तु प्रस्तुत

उपन्यास अपनी पूरी मौलिका को प्राप्त होता है तो। इसका मुख्य कारण ईरानी क्रान्ति में महिलाओं का सत प्रतिशत योगदान है।

शाल्मली उपन्यास में स्त्री संवेदना

उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग नौंवे दशक में प्रकाशित 'शाल्मली' उपन्यास स्त्री संवेदना का वह दरख्त है जिसकी जड़े, तना, टहनी, पत्ती, सब हरा-भरा होने के बावजूद अपमान, तिरस्कार, कुसंस्कारी, दासी आदि की संज्ञा से नवाज़ा गया है। पुरुष प्रधान समाज में नारी कितनी भी कर्मशील एवं निष्ठबध्ध क्यों न हो उसकी सीमा का निर्धारण एवं अभिज्ञान कराना पुरुष का जन्म सिध्ध अधिकार है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र, सामाजिक एवं शिक्षित नारी जो अपने कद को ऊँचा करने में दिन-रात संलग्न है, उसको तानों, संतासों के सिवाय कुछ भी प्राप्त नहीं होता । 'शाल्मली' उपन्यास रती मुक्ति आन्दोलन, शिक्षा, आर्थिक सम्पन्नता, स्त्री की कुशाग्र बुद्धि कुशलता, और निरंतर विकसित आत्म-सजग चेतना का ज्वलंत उदाहरण है। ज्वलंत इसलिए क्योंकि 1987 में प्रकाशित यह उपन्यास नारी की संवेदना के विविध पक्षों का उद्घाटन आज भी उतनी मजबूती से करने में सक्षम है जितनी यह उस समय में विश्लेषित करता था। यह उपन्यास महानगरीय जीवन के चकाचौंध से चकराये एक ऐसे पुरुष के मानसिक शीत-युद्ध को अभिव्यक्त करता है जिसकी जमीर खोखली एवं अस्त्रीत्वहीन है। कथा का नायक 'नरेश' एक निम्न मध्यवर्गीय पात्र है, जो समूचे निम्न मध्यवर्गीय समाज की सोच को कंलकित करता है। इसमे उसका ही नही बल्कि उसके संस्कार विहीनता का पूरा हाथ है ।

नारी संवेदना की प्रतिमूर्ति इस उपन्यास की कथा-नायिका शाल्मली निम्न मध्य वर्गीय होने बावजूद उच्च संस्कारों से सम्पन्न लड़की है। जहाँ लड़की को लड़के ईसमान सादी जरूरत की सुविधाएँ उपलब्ध होती है। पुराने जमाने के होने के बाद भी उसके पिता आधुनिक खयाल के व्यक्ति हैं जिनमें विवेक और विनम्रता के साथ-साथ

शिक्षा और संस्कार का पुट है। परंपरावादी होने के बाद भी 'शाल्मली' के प्रति अनुदार नही है। उसके माता-पिता का वैवाहिक जीवन आपसी समझ, विश्वास और त्याग की जमीन पर पल्लवित एवं पुष्पित है जिसका 'फल' ' शाल्मली' के रूप में शिक्षित, आर्थिक सम्पन्न, विवेकी उदार एवं संवेदनशील बेटी के रूप में प्रात हुआ है। 'शाल्मली' माता-पिता की इकलौती औलाद होने के कारण बेटी और बेटे दोनो का प्यार पाती है। उसके पिता हमेश 'शाल्मली' को एक पुत्र के रूप में निहारते, दुलारते थे किन्तु लाड के कारण वह बिगड़ जाय इसका लेश-मात्र भी चिन्ह शाल्मली में नहीं मिलता है।

कथा नायिका एम० ए० की पढ़ाई समाप्त करके, कम्पिटशन में बैठती है। परीक्षा भी पास करती है। वह केवल एक घरेलू भारतीय महिला बनकर जीना पसंद नही करती। शाल्मली इस ख्याल से ही भयभीत हो जाती है कि यदि इतना पढ़-लिखकर भी मैं चूल्हे-चौके में जीवन खपा दूँ तो शिक्षा का कोई औचित्य नही रहेगा।

शाल्मली के पिता बेटी के विवाह हेतु एक सुशिक्षित लड़का चाहते थे अत: उन्हें 'नरेश' काफी पसंद आया। जल्द ही नरेश और शाल्मली परिणय-सूत्र में बंध गये। कारण कि 'नरेश' एक सरकारी दफ्तर में अनुभाग अधिकारी के पद पर आसीन था। विवाहोपरान्त ही मूल कथा गति पकड़ती है और यहीं से शुरू होता है स्त्री संघर्ष का संवेदनात्मक आयाम। नरेश और शाल्मली का नौकरी-पेशा को लेकर अलग-अलग विचार है। नरेश का मानना है कि नौकरी करने की क्या जरूरत है? वहीं शाल्मली का तर्क है कि पूरा समय घर में बैठकर क्यों बर्बाद करना। महगाई के जमाने में यदि दोनों कमाएँ गृहस्थी संपन्न रहती है। नरेश को शाल्मली का इस तरीके से तर्क देना पसंद नही आता है। वह हर कोशिश करके शाल्मली को यह जता देता था कि मैं पति हूँ। और तुम पत्नी । शाल्मली को पहला झटका तब लगता है जब इन दोनों शब्दों के निहितार्थ 'स्वामी और 'दासी' 'रक्षक' और 'रक्षिता' के रूप में उसे बताए जाते हैं।

शाल्मली का वजूद विवाह को सिर्फ पति-पत्नी के सीमित दायरे में बाँधकर देखना स्वीकार नही करता वह चाहती है कि नरेश उसको एक साथी, हमसफर के-रूप में स्वीकार करें। जीवन की समस्त गतिविधियाँ आपसी समझ और परस्पर सहकार से चलें किन्तु नरेश इन सब चीजों पर ध्यान ही नहीं देता। अपितु वह शाल्मली से संवाद ही कुछ इस प्रकार स्थापित करता है-"तुम ठहरी एक आधुनिक विचार की महिला विचारों में स्वतंत्र, व्यवहार में उन्मुक्त, तुम्हारे संस्कार..... "[36]

सच्चे अर्थो में लेखिका का कथानायक कुण्ठित मानसिकता का व्यक्ति है क्योंकि शाल्मली का जो तर्क विचारों की आधुनिकता का उल्लेखनीय गुण बनना चाहिए। वह नरेश के कुंण्ठा का सबब सिद्ध होता है।

"विवाह के कुछ दिन बाद ही उसे लगने लगा कि उनके बीच कुछ घटा था जिससे एक ही ध्वनि गूंजी थी कि नरेश पति है और वह पत्नी । स्वामी और दासी का यह संबंध एक काली छाया बन उसके और नरेश के बीच एक मजबूत दीवार का रूप धरने लगी थी।"[37]

नरेश महत्वाकांक्षी व्यक्ति है। वह यह तो चाहता है कि उसकी बीबी पढ़ी-लिखी होशियार हो। यहाँ तक कि नौकरी- पेशा से भी उसे कुछ समस्या नही है किन्तु वह यह भी चाहता है कि पत्नी पूर्णत: पति सेविका भी रहे। पढ़ी-लिखी नौकरी पेशा वाली वह इसलिए चाहता है क्योंकि उसके समवयस्क के सभी लोगों की पत्नियाँ ऐसी ही हैं और नौकरी-पेशा इसलिए की उसका सामाजिक एवं आर्थिक स्टेटस मेंटेन रहे। उसकी नजर में कामकाजी बीबी के साथ-साथ बिना तर्क किए उसके आदेशों का पालन करने वाली पत्नी ही गुणी है, नहीं तो स्त्री का कोई महत्व नही। शाल्मली इसके विपरीत जब तर्क से उसकी बात काटकर तार्किक प्रश्न पूछती है तो वह सही जवाब नहीं दे पाता और झुंझला जाता है-

"मैं तुमसे बहस नही कर सकता। तुम्हारे तर्क मुझे अपने बॉस की याद दिला देते हैं....पत्नी हो पत्नी की तरह रहो समझी।"38

'पत्नी हो पत्नी की तरह रहो; से नरेश का आशय है बिना तर्क किये उसके मनोनुकूल व्यवहार करना । जो वह चाहे, जैसा उसे पसंद हो, उसे वैसा ही शाल्मली स्वीकार करके अपना भाग्य सराहे किन्तु शाल्मली का मानना है कि 'बिना' सवाल किए सब स्वीकार लेने से घर में शान्ति तो हो सकती है- किन्तु इसके लिए उसे अपने संवेदनाओं कीबलि चढ़ानी पड़ेगी। शाल्मली को यह हरगिज स्वीकार नहीं है। कारण कि शाल्मली कामकाजी महिला है उसे घर में गृहस्थी के अलावा ऑफिस भी सम्हालना होता है। पर्शनल एवं प्रोफेशनल दोनो लाईफ में यदि पति का बराबर मेंटली सपोर्ट न हो तो एक महिला संवेदनात्मक रूप से कितनी टूट सकती है इसका अंदाजा भी नरेश को नहीं है। दफ़्तर और घर दोनों में शाल्मली को तालमेल बिठाना होता है। घर, पति को संभालना और दफ्तर में ऊपरवालों और मातहतों के साथ पटरी बैठाना कोई सरल काम तो नहीं है। संभालना ही नहीं दोनो पक्ष संतुष्ट भी रहें इस बात का भी औरतों को ध्यान रखना पड़ता है। इस जतन में शाल्मली कितनी थक जाती होगी इसका किसी को परवाह नहीं होता। नरेश को अपना काम, काम लगता है किन्तु पत्नी के काम को वह इतना महत्वपूर्ण नहीं मानता है।

कालांतर से लेकर आजतक हमारे समाज की विडंबना रही है कि लड़की के परिप्रेक्ष्य में सभी डिसीजन पुरुषों के हाथों में ही रहे हैं। जब बेटी छोटी हो तब से लेकर शादी तक वह क्या करे? क्या न करे ? क्या पढ़ना है? कैसी नौकरी करनी चाहिए कैसी नही करनी चाहिए? इसका निर्धारण उसके पिताजी करते हैं। विवाह के बाद यह अधिकार स्वत: पति के पास हस्तांतरित हो जाता है। यहाँ तक यदि लड़की नौकरी कर रही है तो भी पति परमेश्वर के सहमति से नौकरी जारी रख सकती है, वरना नौकरी छोड़नी भी पड़ सकती है।

शाल्मली कम्पिटशन की परीक्षा उत्तीर्ण करके साक्षात्कार की तैयारी करने लगती है, तब नरेश कहता है-“पढ़ाई लिखाई को गोली मारो। विवाह हो गया बस”[39]

नरेश सकीर्ण मानसिकता का व्यक्ति है। उसकी नजर में लड़कियां सिर्फ अच्छे वर के मिलने तक पढ़ाई करें। अच्छा पति मिलने के बाद पढ़ने की क्या आवश्यकता है ? इस बात का शाल्मली तार्किक जवाब देती है तो वह चिढ़ जाता है। उसका कुंण्ठित मन औरत को तर्क करने की इजाजत नहीं देता। वह नारी को सिर्फ एक शरीर तक सीमित मानता है। जहाँ संवेदना से कोई सरोकार नहीं है। शाल्मली इस मानसिकता का विरोध करती हुई सोचती है कि यदि औरत एक देह मात्र है तो ! आँख, कान, जबान आदि को मनुष्य को क्या जरूरत है। वह समझ चुकी थी कि नरेश का संसार, घर, दफ्तर, मिल यहाँ तक ही सीमित था । शाल्मली अक्सर इस सोच में उलझ जाती है कि यदि उसका चयन हो जाता है तो, क्या नरेश उसे ट्रेनिंग में भेजने की अनुमति देगा ? क्या नौकरी करने देगा?

प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद जब शाल्मली साक्षात्कार हेतु नरेश से अनुमति मागती है “मेरे इण्टरव्यू की डेट आ गई है।"[40] तब नरेश कहता है- “क्या करोगी नौकरी करके ? यह सुख कही.... नरेश सोचते हुए बोला।"[41]
"इस सुख के साथ और सुख भी तो हमें चाहिए" हँसती हुई शाल्मली बोली । "ठीक है इण्टरव्यू में बैठो, बाद में सोचुँगा इस पर।”[42]

शाल्मली का मन विवाह के पूर्व जितना शांत और स्वतंत्र था, विवाह के बाढ़ उतना ही परतंत्र और भयभीत। उसको अपने कैरियर को लेकर हमेशा कटघरे में खड़ा होना पड़ता है। चयन हो जाने के बाद भी उसे नरेश से नौकरी करने की अनुमति लेनी पड़ेगी। जब भी फुरसत के समय में शाल्मली पढ़ने की कोशिश करती तो उसे बड़ा अटपटा लगता, क्योंकि उसके घर की औरतों को वह हमेशा गृहस्थी में ही हाँथ बँटाते देखने का आदी रहा है। अतः उसका संस्कार उस पर हावी रहता है। वह

शाल्मली का खाली समय में विधाअध्ययन करना पसंद नहीं करता। उसका मानना है कि विवाह तक लड़कियों का पढ़ाई करना वाजिब है किन्तु अच्छा पति मिलने के बाद इस किताबी माथापच्ची में क्यों मरना ।

जब शाल्मली पढाई के महत्व का औरत के जीवन में क्या भूमिका है? विषय पर तार्किक प्रतिवाद करती है तब वह चिढ़कर कहता है - "बाल की खाल न निकाला करो। मुझे बहस करने वाली औरत बुरी लगती है।"[43]

नरेश' का शाल्मली के प्रति इस कदर का व्यवहार मात नौकरी पेशा या शिक्षा से संबंधिक तर्क-वितर्क के कारण ही नहीं था। जीवन साथी के तौर पर भी वह संवेदन शून्य है। औरत अपने साथी से प्यार की किस फुहार की आकांक्षी होती है, उसका इल्म भी उसे नहीं है। वह औरत को विस्तर पर खिला हुआ एक फूल; जिसे मसलने की प्रतीक्षा तक खिले रहना है, के सिवा कुछ नही समझता। एक औरत को साथी से क्या अपेक्षा होती है ? और उस अपेक्षा पर खरा न उतरने पर वह संवेदनात्मक रूप से कितना टूटती है ? इसका उत्कृष्ट उदाहरण 'शाल्मली' उपन्यास के इस कथ्य से दृष्टव्य है-

"शाल्मली स्पर्शो की सरसराहट के बीच सोचती रही की इतने दिन शादी को गुजर गए, मगर आज भी वह नरेश के व्यक्तित्व में न झाँक सकी। वह खुलता ही नहीं। जब भी वह कोशिश की, हर बार बंद दरवाजे से माथा टकराया। खाना, प्यार, सोना-जागना, इससे परे भी अपने साथी से एक पहचान बनती है, उसका आरंभ शाल्मली को कहीं नजर नहीं आता, तभी वह नरेश को केवल भौतिक रूप से समर्पण कर पाती है। आत्मा और भावना उसी तरह अनछुई-खामोश पड़ी सोती रहती है।"[44]

दिल के साथी का क्या अर्थ होता है ? इस तथ्य का मतलब वह हमेशा रात को करवट बदलकर सोचती रहती। शाल्मली की संवेदना सोच के स्तर पर ही उसे स्वपनिल संसार का सैर कराते थे। उसी में वह डूबी जीती थी। नरेश तो बहुत जल्द

ही नींद के गहरे सागर में डूब जाता था। शाल्मली को लगता है जैसे वह एक बेजान लिबास है जिसे जरूरत पड़ने पर पहना जाता है और काम निकल जाने के बाद उतारकर खूँटी पर टाँग दिया जाता है। प्रत्येक दिन के लिबासपोशी से उसकी संवेदना गहरी आहत होती है। प्यास बुझने के जगह और विकराल रूप धारण कर लेती है। देह से हटकर भी तो कुछ आवश्यकता होती है मनुष्य की। जब नरेश ही नही समझता तो कोई और क्यों और किसलिए समझेगा ?

शाल्मली अक्सर यही सोचती की विधाता ने आखिर क्या लिखा है उसके भाग्य में ? जब नरेश उसको नौकरी करने से मना करता है तो वह पूरी तरह इसका खण्डन करती है। जो नौकरी उसको उसके कर्म और भाग्य के संयोग से प्राप्त हुई है उसको छोड़ने की बात से ही उसके अन्दर की औरत -हृदय जाती है। उसका हृदय एवं संवेदनाएँ इस बात का प्रमाण पेश करने लगे थे कि उसके अन्दर की औरत स्वत्व का मान रखने हेतु बगावत करने से भी गुरेज नहीं करेगी। शाल्मली के रवैये से नरेश को ज्ञात हो गया था कि शाल्मली गृहस्थी में दिलचस्पी नही ले रहीं है तब वह कहता है-

"तुम औरते अपने को जाने क्या समझती हो ? बाहर नही निकलोगी, काम नहीं करोगी, तो संसार' के सारे काम ठप हो जायेगें.. यह जान लो तुम, यह फैसला मेरी भावनाओ के मूल्य पर नही बल्कि इस घर के मूल्य पर कर रही हो ।"[45]

नायिका सोच के गहरे समुन्दर में गोते लगाती है किन्तु उसे समझ में नहीं आता कि आखिर उससे कमी कहाँ हो रही है। उसने दाम्पत्य जीवन में सुख बना रहे इसके लिए उसने अनेक अनचाहे समझौते भी किये। नरेश की अनुशंसा को नकारने की कम से कम कोशिश की है। लेकिन उसका मस्तिष्क भी आखिर उस बालू की भीत की तरह तो नही है जो पानी के थपेड़ों से एक झटके में टूट जाय। कैसे समझाए वह नमेश को उसके मन की वसुधा पर फैले नरेश के वासनाओं, भावनाओं में पगे

उसके शब्दों के वियावान जंगल को वह काट नही सकती और न ही अपनी उर्वर-मृदा को बदल सकती है ।

नासिरा शर्मा 'औरत के लिए औरत' पुस्तक में नारी संवेदना के इसी मानसिक द्वंद्व का चित्रण करत हुए लिखती है- "प्रश्न है नारी मुक्ति से अभिप्राय क्या हैं ? उसका उदेश्य क्या केवल मर्द का मुकाबला करना है ? कदम से कदम मिलाकर चलने का अर्थ मर्दाना व्यवहार और आचार की नकल? या फिर अपने स्वयं के दायरे को बढ़ाना और अपनी बेड़ियाँ अपनी आवश्यकता को देखकर तोड़ना ? पूर्व में औरत देवी है, पश्चिम में एक पुर्जा। दोनो जगह बेजान-एक जगह पत्थर दूसरी जगह लोहा। हर जगह उसे गढ़ने वाला मर्द समाज अपने लाभ को दृष्टि में रखकर औरत को स्वतंत्रता देता है।"[46]

शाल्मली को नौकरी करने की स्वतंत्रता मिली है इसका मतलब यह नहीं की वह स्वतंत्र हो गई है। नरेश को स्वतंत्रता देने का अहम्-भाव है तो शाल्मली को इसकी कसक । दोनों स्थितियों में धीरे-धीरे उनके बीच दूरी बढ़ती गई। शाल्मली को याद रखना होगा कि वह नौकरी करती हुई भी एक औरत है। औरत को अपनी मर्यादा का ध्यान तो रखना ही होगा। कथानायक का बार-बार शाल्मली को औरत होने का एहसास कराना यह सिद्ध करता है कि उसके घर के संस्कार उसे भी परंपरा से मिले हैं। पुरुष वर्चस्व वादी सोच और संस्कारजन्य दुर्बलता का शिकार नरेश तो है ही साथ ही उसे इस बात का भी डर सताता रहता है कि शाल्मली पद-प्रतिष्ठा में उससे ही है, उसका बढ़ता कद कहीं उसके अहं को तार-तार न कर दे इसलिए वह शाल्मली पर लगाम चाहता है। अपना आधिपत्य बनाए रखने के लिए वह सब तौर तरीका को आजमाने से बाज नही आता जिससे शाल्मली को पता चले कि वह एक औरत हे और उसे पति की हर एक इच्छा किसी भी परिस्थिति में पूरी करनी है। शराब पीना पार्टियों में जाना रात देर से लौटना, पढ़ाई स्त्रियों से संबंध बनाना, घर पर मित्रों को

बुलाकर यह दिखाना की उसका अपनी पत्नी पर कितना रौब है, जैसी हरकतें उसे पुरुषोचित लगती थी। शाल्मली उसके मनःस्थिति को भलीभाँति समझती है। पर कोई प्रतिक्रिया नहीं करती है।

शाल्मली का शान्तिपूर्ण व्यवहार नरेश को खलता था । वह शाल्मली को परेशान करना चाहता है किन्तु प्रतिक्रिया न होने पर वह स्वयं को पराजित महसूस करने लगा। उसे जिस तूफान की अपेक्षा थी उसका अंकुरण तक नही हुआ। यह स्थिति उसे घर और पत्नी से और विरफ़त करती है। दोनों के सन्मुख यह प्रश्न आ खड़ा होता है कि अब आगे क्या हो ? न मामला सुलझता और है न खारिज होता जान पड़ता है।

'पाब्लो नेरुदा' की एक अप्रतिम कविता में नरेशवादी सोच दिखाई पड़ती है-

"ओ स्त्री देह,
मै महज एक सुरंग था
चिड़ियाँ डरती थी मुझसे,
रात मुझे अपने आक्रमण से
दबोचती थी हर रोज।
तब महज खुद की रक्षा करने को
मैने तुझे अपना हथियार बना डाला। "[47]

दूसरे के हाथों कभी हथियार, कभी पैर तले की धूल और कभी रंगीन सपना बनते-बनते अपने यहाँ अधिकतर स्त्रियों की अहं की तलाश सरल स्पष्ट और तर्कचेता होने के बजाय प्राय: अमूर्त, अन्तर्मुखी और ऋजु होती चली जाती है शाल्मली की तरह। नरेश भी शाल्मली को अपना हथियार बनाता है। उसको अपनी छोटी नौकरी में उतनी संतुष्टि नहीं होती है। वह बहुत जल्द अमीर होना चाहता है। अमीर होने का सपना शाल्मली के पद एवं आधिकारिक पोस्ट से ज्यादा संभव था अत: वह शाल्मली

के नौकरी में ज्यादा रूचि लेने लगा था। जब भी वह शाल्मली का पासबुक देखता है तो उसे डी० डी० ए० की फ्लैट बुक कराने की सलाह देता है। कभी शेयर खरीदने की बात करता तो कभी छोटे-मोटे बिज़नेस में हिस्सेदारी की हिदायत । एक रोज बस में उसे खड़ा होकर आना पड़ा इससे वह अपने दोस्तों के बीच- छोटा महसूस करने लगा। ऑफिस में देरी से पहुंचने के कारण वह शाल्मली को कार खरीदने को कहता है। नरेश किसी से लिफ्ट मांगने में खुद को अपमानित महसूस करता है। नरेश की महत्वकांक्षाओं का कोई अंत नही था। वह यह नही जानता था कि दिल्ली का हर आदमी दूसरे से अमीर है । और दूसरा पहले से ।

नरेश के मन में शहरी बाबू बनने की इच्छा इतनी प्रबल हो उठी थी कि वह मकान और कार के लिए शाल्मली, को आड़े-तिरछे हथकण्डे अपनाने और मंत्री से सिफारिस लगवाने तक की बात करता है। शाल्मली सोचती है कि वह नरेश को कैसे समझाएँ कि मंत्री के 'सिफारिशनामा' से मुझे मकान तो जल्दी मिल जायेगा किन्तु उसकी कीमत मुझे ही भुगतना पड़ेगा चाहे उसके पक्ष में भ्रष्टाचार का साथ देकर या अपने दामन पर बदनामी का दाग लेकर। नरेश को ऐसा लगता है कि शाल्मली चीजों को समझ नहीं पा रही है वह हठ करते हुए कहता है- "तुम हर महत्वपूर्ण चीज को इतने सरलता से टाल देती हो कि मुझे गुस्सा आ जाता है। तुम किसी से नहीं कहलवाओगी, तो कोई और सिफारिश देकर अपना काम निकलवा लेगा।"[48]

"तुम हर छोटी बात पर इतने उत्तेजित क्यों हो जाते हो ?।" [49]

"इसलिए कि तुम औरत हो इन बातों को गहराई से नही समझती हो।"[50]

शाल्मली प्रतिवाद करती हुई कहती है-

"एक तो तुमसे विनम्र निवेदन है कि बार-बार औरत कहकर मुझ पर टीका-टिप्पणी मत किया करो दूसरे औरत की अक्ल पर शक करना छोड़ दो। एक स्तर के

बाद हम औरत-मर्द नहीं रह जाते हैं बल्कि हमारा काम हमारी पहचान होती है। हमारी अकल हमारी कसौटी होती है।"[51]

शाल्मली को इतनी वात पूर्णतः समझ में आ गई थी कि नरेश दो मूहाँपन व्यक्तित्व वाला व्यक्ति है। वह शाल्मली को तब प्यार-दुलार दिखाता जब उसे कुछ चाहिए होता है वरन् अन्य परिस्थितियों में वह शाल्मली के हर काम में टाँग अड़ाता रहता। नरेश अपने रिश्तेदारों में शाल्मली का कमाया हुआ धन खूब लुटाता किन्तु शाल्मली को उनसे दूर रहने की हिदायत देता रहता है। नरेश के बर्ताव से शाल्मली के कार्य-व्यापार में एक अलग धार आ गई थी जिससे वह अपने सहकर्मियो में विशेष आदर-सत्कार पाती थी।

नासिरा शर्मा की नायिका संवेदनात्मक स्तर पर जब पुरुष मानसिकता का मूल्यांकन करती हैं तो वह यह प्रश्न उठाती हैं कि कन्यादान के बदले युवक-दान की रस्म क्यों नही होती ? जब ऐसा होता तो 'सास' 'दामाद को डाँटती-

"क्या सिखाया है तेरे माँ-बाप ने मुँहजले । कोई संस्कार तो दिया नहीं ऊपर से दान-दहेज में धेला भी नहीं।"[52]

कथा नायक की दिनचर्या अपने पुराने रास्ते पर स्थिर बनी रही वह रात को देर से घर वापस आता किन्तु औरत को तोहमत लगाकर अपनी गलतियों को छिपाता रहता है। लेखिका की नायिका इस स्तर पर पूरे गर्मजोशी के साथ उसका विरोध करती नजर आती है। शाल्मली कहती है मैं कभी भी तुम्हारे बंधन से निकल सकती हूँ। पुरुष प्रदक्त स्वतंत्रता की भीख मुझे नही चाहिए। न मैं तुम्हारी छाया हूँ न प्रतिध्वनि न ही तुम्हारा विस्तर कि जब चाहा बिछा दिया और आराम किया। हम औरतें भी हाड़-मांस की मानवी हैं कोई सादा कागज नही जिसपर पुरुष अपनी मर्जी से हस्ताक्षर कर सकता हैं । शाल्मली पूरी औरत जमात की ओर से समाज के सामने सवाल उठाती हुई कहती है-

"हम औरतें हैं क्या ? गीली मिट्टी ? कितनी बार हम अपने को मिटाकर नये-नये रुप में ढालें ? यानि हमारा कोई अस्तित्व नहीं ? अधिकार नही, विवाह का अर्थ है, अपना जन्म स्थान भुला देना और एक मनुष्य की इच्छा और रुचि का दास बन जाना ।"[53]

नरेश को कार और डी० डी० में मकान लेने की प्रवल इच्छा थी। शाल्मली को लगा कि शायद इन दोनों सुविधाओं को पाकर नरेश सुधर जायेगा अतः वह कार बुक करा देती है। नई कार पाकर नरेश वास्तव में थोड़ा विनीत हो गया। कार की साफ-सफाई में निरंतर लगा रहता। शाल्मली के सुकुन में कार ने कोई नया परिवर्तन नही जोड़ा। नरेश दोस्तों के साथ घूमता, घर में दावतें करता, चीजों को दिखाता किन्तु शाल्मली के काम में हाँथ बटानें में उसके पुरुष मानसिकता का अहं टकराता था। शाल्मली सोचती थी कि यह कौन है ? जैसे नरेश को वह रोज नए-नए रूप में अवतरित महसूस करती थी। जीवन से जैसे सारी खुशियों ऊजड़ गई हों। नरेश उसे पराया-पराया सा जान पड़ता। शाल्मली को ऐसा लगता जैसे वह नरेश को धन और सुविधाएँ देने वाली फैक्टरी मात्र हो ।

नरेश महत्वाकांक्षी होने के साथ-साथ व्यवहार कुशल व्यक्ति था।सार्वजनिक स्थानों एवं समारोहों में वह शाल्मली की हृदय खोलकर कर प्रशंसा करता। ऐसे वक्त शाल्मली को वह अजनबी सा जान पड़ता। डी० डी० ए. में मकान मिलते ही नरेश के खुशी का ठिकाना नही रहा किन्तु पत्नी को इसकी खुशियाँ बांटने में वह संकोच करता है। वह तो इस बात में ही खुश रहता है कि उसके कारण किसी औरत को सौभाग्यशाली बनने का अवसर मिला है। नरेश की संकीर्ण मानसिकता यह प्रमाण पेश करती है कि औरत की शारीरिक जरूरत पूरी हों, संतान, धन, वैभव बना रहे इससे ज्यादा एक औरत को क्या चाहिए ?

लेखिका का मन्तव्य है -

"एक पुरुष वास्तव में स्त्री में क्या देखता है..? और उससे क्या पाना चाहता है? किस गुण में उसकी इच्छा की तृप्ति निहित है। मोह में, धन में, आदर में, बुद्धि प्रखरता से..."[54]

इन सभी गुणों से शाल्मली संपन्न थी। वह शाल्मली के रूप, बुद्धि पर कायल था किन्तु उसका शक नाग की तरह उसको डसता था। नरेश सोचता है, कि यदि मैं इसके रूप लावण्य पर इतना मरता हूँ तो कोई और क्यों न आकर्षित होता होगा। लेखिका यदि इस प्रसंग को उपन्यास में उठाती तो यह एक साधारण कोटि का उपन्यास वन जाता। लेखिकाने इस उपन्यास में परंपरागत संस्कृति और संस्कार से युक्त एक ऐसी स्त्री का अवतरित रुप दिखाया है जो आधुनिकता के मनोवृत्ति के साथ जन्मी है। शाल्मली जैसी पत्नी पाकर कौन ऐसा होगा जो अपने भाग्य को न सराहे किन्तु नरेश सुबह छः बजे घर से बाहर निकल जाता और शाम को नौ बजे बाहर अपना भाग्य तलाशकर खाली हाथ वापस लौट आता।

नरेश की अनियमित दिनचर्या शाल्मली एवं नरेश दोनों की तनख्वाह को महीने के अन्दर ही निगल जाती थी जिसके कारण घर में कलह ज्यादा बढ़ गया। नरेश पहले-पहल प्रतिदिन शाल्मली को कार से घर लाने और ऑफिस छोड़ने का काम करता था परंतु आपसी कलह और झगड़े के चलते उसको यह महसूस होने लगा कि क्या वह शाल्मली का ड्राईवर है जो उसे समय से घर, ऑफिस छोड़ने जाए? अत: वह यह क्रिया बंद कर दिया शाल्मली जल्दी घर आती तो वह लेट आता । वह लेट आती तो नरेश जल्दी आता | शाल्मली उलाहना, प्रताड़ना के माहौल में बिखकर टूट जाती है। नरेश उसके हर तर्क, कर्तव्य को धारदार हथियार से काटकर रख देता। उसने अनेकों प्रयास किया कि नरेश की गलतफहमी दूर कर सके किन्तु कोई परिणाम नही मिला। तब शाल्मली समाज में सर उठाकर जीने की प्रतीक्षा करती है, सर झुकाकर नही।

विवाह के पाँच वर्ष बाद शाल्मली प्रेग्नेंट हुई थी। मगर नरेश के कुंण्ठित स्वभाव उसके पहले ही उसको प्रताड़ित करना आरंभ कर दिया था। परेशान शाल्मली इस नए उगे पौध से तालमेल बिठाने में लग गयी। उस समय नरेश को यह सूचना देना कि वह माँ बनने वाली है शाल्मली को अत्यन्त छिछोरी हरफ़त जान पड़ी। कारण कि वह बच्चे का पुल बनाकर नरेश को पाना नही चाहती थी बल्कि जिस बिन्दु से उसने नरेश के साथ जीवन शुरु किया था उसी बिन्दु को केन्द्र मानेगी । किसी भी थर्ड परशन की उपस्थिति उसे असहनीय है। अत: नर्सिंगहोम में जाकर वह उस नन्हें जीव की आहुति दे देती है। उस घटना को बीते तीन साल हो गये। आज लगता है कि उसने उस समय कितने बुद्धिमानी का काम किया था? वरना उस नन्ही सी जान को लेकर अबला और करुणा की मूर्ति बनी वह बच्चे के पिता को ढुढ़ती रहती। जो अपनी ही कुण्ठाओं का शिकार हुआ उससे दूर भागता जा रहा है। इस घटना को शाल्मली जब अपनी माँ से बताई तो उसकी माँ सन्न रह गई, फिर बच्चे की क्या गलती थी ? कहकर रोने लगी

"यही तेरा भाग्य था शालू ? इसे ही सँवार बेटी । रीति-रिवाजों से कटकर कौन जी पाता है, पगली। अपना और दूसरों का हिस्सा भोगना ही औरत का भाग्य है, तू उससे अलग कहाँ है ?"[55]

शाल्मली पहले से ही नरेश से दुराव छिपाव का कोई बर्ताव नही करती थी। वह सोचती है कि यह विसंगति क्यों और कैसे उत्पन्न हुई? नरेश के शौक दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे, शराब पार्टी, क्लब, पर स्त्रीगमन आदि बुराईयाँ उसके अन्दर प्रवेश करती जा रही थी इसका कारण क्या है? शाल्मली इसके तह तक जाने की कोशिश करती है। आत्ममंथन करती है कि आखिर नरेश मीठा बोलना तो छोड़ो अब कड़वा भी नही बोलता है। वह अपने चिर-परिचितों में स्वांगे भरने लगा है कि

शाल्मली जैसी नौकरी तो उसके बाएँ हाँथ का खेल है। अब वह उसकी कार भी बाहर नही ले जाता था। नशे ही हालत में कई बार गाड़ी टकरा आया था।

'औरत के लिए औरत' पुस्तक में नासिरा शर्मा लिखती है-"आदिवासी महिलाओं का सबसे बड़ा दुःख मर्दों का बहुत अधिक शराब पीना है । शराब के नशे की दो कैफियत हैं- या तो लुढ़क जाना या फिर उत्तेजित होना। ऐसी स्थिति में उग्रता का संबंधों के बीच जन्म पाना अनिवार्य हो जाता है और अकसर नौबत तलाक तक पहुँच जाती है।"[56]

इन्ही तथ्यों का शिकार शाल्मली उपन्यास का कथा नायक नरेश है। किन्तु अपना संपूर्ण अधिकार नरेश के हाथों में सौंपकर शाल्मली भी गहरे आघात सहन करती है नासिरा शर्मा' लिखती है- "बेहतर जिन्दगी की लालसा में लड़कियाँ जब अधिकार दे देती है उस समय उनके पति या दूसरा विवाह कर लेते हैं या फिर कई अन्य संबंध बना पत्नी के प्रति उदासीन हो जाते हैं।"[57]

शाल्मली को सरकारी काम से शिलांग जाना था उसने नरेश को भी साथ आने को कहा तो नरेश सीधा जवाब देता है -

"तुम कहीं नहीं जाओगी। कारण बता देना कि पति पसंद नहीं करता।"

तब शाल्मली ने कहा-

"सभी औरतें ऐसा कहने लगी तो सरकारी नौकरी का पात्रन कैसे होगा।"

तब नरेश कहता है कि-

"तुम जानना चाहोगी की पुरुष की निगाह में औरत क्या है? भोगने की वस्तु,.... वही उसकी पहचान है।"[60]

आगे वह कहता है कि-

"पति का अधिकार सिर्फ धर्मग्रन्थों में ही नहीं अपितु संविधान में भी है। पति की आज्ञा के बिना वह कहीं नहीं जा सकती..?[61]

स्त्री मात्र भोगने की वस्तु होती है। यह वाक्य सुनकर शाल्मली के बदन में आग लग गई। वह पहली बार अपना आपा खोते हुए नरेश का मुँह नोच डाली। नरेश जब तक संभलता तब तक वह खुद को गुसलखाने में कैद कर ली। भीरु एवं किल्वीसी नरेश इस बात से घबरा गया कि कहीं वह आत्महत्या न कर ले। नासिरा की नायिका इतनी बुजदिल नहीं है, वह हालातों से संघर्ष करना जानती है। विवाह पूर्व शाल्मली को लगता था कि नरेश का चीजों को देखने का नजरिया अलग है किन्तु वह उस अंदाज पर खरा नहीं उतर सका । अपने वर्क के प्रति निष्ठबद्ध शाल्मली को उसकी काबिलियत के आधार पर जल्द ही पर्यावरण विभाग के डायरेक्टर के पद पर पदोन्नति हो गई। एक बार अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन में उसे विदेश जाने का मौका मिला उसने नरेश को साथ चलने का प्रस्ताव दिया किन्तु वह साफ इन्कार कर दिया। शाल्मली की सारी कोशिश असफल रही नरेश को पाने हेतु । विदेश में शाल्मली को एक विदेशी सदस्य अपने साथ कुछ वक्त जीने का ऑफर देता है। शाल्मली उसको धिक्कार देती है। वह सोचती है कि एक साथ एक स्त्री या पुरुष दो लोगों से कैसे संवेदनात्मक स्तर पर जुड़ सकते हैं। उसे नरेश के बगैर कहीं जाना अच्छा नही लगता है।

विदेश से वापस लौटने पर नौकरानी ने नरेश की जिन हरकतों का विस्तार से पर्दाफास किया, शाल्मली का वज़ूद डगमगाने लगा उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके पैरों तले जमीन खिसक गई हो। सात्मली का 'स्त्रीत्व' इससे ज्यादा और कुछ सहना खुद अपराधी का साथ देने जैसा महसूस करने लगी। उसके ही घर में उसकी किस्मत और अस्मिता के पर्दे तार-तार किये गये यह शाल्मली के गले के नीचे नहीं उतरा। इतना बड़ा विस्वासघात कि उसका सम्पूर्ण अस्तित्व भूकंप में फाँसी इमारत की तरह ढह गया। शाल्मली ने यह दृढ़निश्चय कर लिया था कि आज के बाद वह नरेश के सामने अपने प्रेम की भीख नहीं मागेगी क्योंकि निष्ठा, आदर, प्रेम अस्था मे किसी

को बताकर देने या मागने की वस्तु नहीं है। इसे तो मन की सच्ची संवेदना से अपर्ण किया जाता है। वह नरेश को सीधे छोड़ देना चाहती है किन्तु एक बार बार करना जरूरी समझा। नरेश ने सपाट तरीके से जवाब दिया हम मर्द हैं किसी से भी संबंध रख इस सकते हैं। शाल्मली कहती है, धर्म ने कानून सिर्फ औरतों के लिए बनाया है, मर्दों के लिए नहीं ? यदि तुम किसी गैर से संबंध रख सकते हो, तो मैं भी ऐसा व्यवहार किसी के साथ एक तो ? नदेश बोला तो मे उसे गोली मार दूंगा । शाल्मली ने कहा यदि मे भी ऐसा ही एक तो? शाल्मली नरेश के सामने प्रश्नवाचक मुद्रा में खड़ी उसी के जवाबों से उसको चुप करा देती है और आगे कहती है-

"मैं बिना किसी धर्मग्रंथ बिना संविधान की सहायता लिए तुम्हें मुक्त कर देती हूँ। यह मैं वचन देती हूँ ।"[62]

शाल्मली नरेश से संवाद करती है। वह उस पराई स्त्री और खुद से किसी एक को चुनने का ऑप्शन देती है। नरेश कुछ निर्णय नही दे सका। शाल्मली ने निर्णय ले लिया की वह नरेश के बगैर भी जीना जानती है-

"दिन पर दिन गुजर रहे हैं, मगर नरेश अपना निर्णय नही दे रहा है। वह सदा की तरह मुझसे अपने को छिपाने के प्रयत्न में विचित्र हरकतें कर रहा है। मैं उसे अब नहीं पुंकारूंगी, अपनी सारी आकांक्षाओं को अपनी सारी संभावनाओं को काम में लगा दूँगी। दिन-रात व्यस्त रहूँगी। एक तीव्रगामी रेल की तरह, शक्ति से भरी हुई पटरी पर तेजी से फिसलती हुई। यात्रियों को उठाती उन्हें उनकी मंजिल पर छोड़ती हुई। दूसरों को सुख देना ही मेरा जीवन लक्ष्य होगा। बस दौड़ती जाऊँगी। ठहरना मेरी मौत होगी शाल्मली अपने से बातें करती ।"[63]

लेखिका ने शाल्मली को अद्धीत जीवट महिला के चरित्र के साथ तराशा है। शाल्मली कहती है कि केवल पुरुष के साथ समय निकालना उसका लक्ष्य नहीं है। वह पुरुष के वर्चस्व से भी इन्कार नही करती कारण की पुरुष औरत का पूरक होता है,

नारी के पूरे जीवन की श्रृंगारिकता पुरुष के कारण ही है। और फिर शाल्मली जैसी औरत जिसकी संवेदना मुखरित ही नही पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हो वह पुरुष का साथ क्यों छोड़ेगी ? मगर जब एक पुरुष, एक साथी, एक मित्र, एक मनुष्य, एक हमसफर की तरह न प्राप्त हो, तो उसमें इतनी शक्ति है कि वह इस संबंध की महिमा से इनकार कर दे भले ही उसको याद कर अपना पूरा जीवन निकाल दे। उसका जीवन में रहना कतई जरूरी नहीं है मगर सम्मान और प्रतिष्ठा, मान और स्वाभिमान को दाँव पर लगाकर नारीत्व की महिमा को खतरे में डालकर वह कुछ भी नही पाना चाहती चाहे पूरा जीवन अकेले ही क्यों न गुजारना पड़े ।

एक दिन शाल्मली की सहेली सरोज उससे कहती है कि जब तुम उससे संबंध नहीं रखती हो तो इस नरक से निकल क्यों नहीं जाती। उसे तलाक दे दो। सरोज कहती है-

"इतना बड़ा संसार है उसको तुम एक व्यक्ति के लिए नरक बना रही हो, जिसे तुम्हारी कोई परवाह नहीं।"[64]

महिला सशक्तिकरण की कार्यकर्ता होने के कारण सरोज शाल्मली को नरेश से संबंध विच्छेद के सभी उपाय और सलाह समझा देती है किन्तु शाल्मली का तजुर्बा साहित्य अध्ययन से रहा है कि -"मै अपने चारो तरफ जब गहराई से देखती हूँ और बचपन में पास-पड़ौस के घरों के धुँधले पड़ गये दृश्यों को याद करती हूँ तो ऐसा विश्वास जागने लगता है कि मर्द-औरत के बीच हर प्रकार का सामाजिक-नैतिक और यहाँ तक की अनैतिक संबंध भी बन जाता है जो प्रगाढ़, अंतरंग और घनिष्ठ होता है। लेकिन भावनात्मक स्तर पर इतने गहरे उतरकर प्रेम को अभिव्यक्त करने के बावजूद उनका संबंध कभी भी मानवीय स्तर पर संतुलित नहीं बन पाता है, आखिर क्यों?[65]

स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संयोग, सहानुभूति, उपेक्षा, अपेक्षा के जालों में लिपटा यह उपन्यास अपने आखिरी पड़ाव पर मात्र नारी संवेदना को लेकर मुखर हो उठता

है। यहाँ सरोज पुरुष विरोधी वक्तव्य प्रस्तुत करती है किन्तु शाल्मली के प्रति नरेश की उदासीनता एवं दुर्व्यवहार भी उसे संबंध विच्छेद की दहलीज तक जाने दिया शाल्मली अपने नारीत्व की रक्षा करते हुए कहती है "औरतों के पास दो ही अभिव्यक्तियाँ हैं या सर झुका देना या समस्या को अधूरा छोड़ सर कटा लेना। मेरा विश्वास न घर छोड़ने पर है न तोड़ने पर न आत्महत्या पर है न अपने को किसी एक के लिए स्वाहा करने में है। मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना भी करती हूँ और विश्वास भी । अधिकार पाना यानी घर निकाला नही और घर बना रहने का अर्थ सम्मान को कुचल फेकना नहीं है। यह जो हमारे मन-मस्तिष्क में अति का भूत सवार हो गया है, वही जीवन के लिए विष समान है।"[66]

सरोज कहती है शाल्मली तुम्हारे जैसी औरतें ही स्त्री की स्वतंत्रता की शत्रु बन उनके विकास में बाधा बनी हुई हैं। एक दिन तुम जरूर पश्चाताप करोगी। मैं तो अविवाहित और स्वतंत्र हूँ। शाल्मली पूरे स्त्री समाज की सोच और संवेदना को समेट अविवाहित सरोज से प्रश्न करती है। क्या तुम अविवाहित रहकर पुरुषों के समाज उनके नाम और आकार से पूर्णत: मुक्त हो सकी हों ?

सरोज कहती है- "हाँ.. मैंने कभी अपने को कमजोर नही पाया।"67 शाल्मली कहती है -"तुम्हारे सामने समस्या केवल पार्टी से निपटने और उससे मुक्त होने की है मगर मेरी नजर मे सही नारी मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति बदलने में है।"[68]

लेखिका नासिरा शर्मानें नारी संवेदना का इतना पाक और पुष्ट मनःस्थिति का विवेचन अपने कथा नायिका और सरोज के मध्य संवादों के माध्यम से प्रस्तुत कराया है कि वास्तव में यह उपन्यास जीवन्त हो उढ़ा है।" सरोज तार्किक प्रश्न करती है

"तुम समझती हो कि आज जो औरत पूर्ण स्वावलम्बी हो गई है, उसे भी दब

कर जीना चाहिए या फिर केवल वासना पूर्ति के लिए पुरुष के आगे समपर्ण करते जाना चाहिए ?"[69]

शाल्मली की भारतीय नारी अपनी पूरी संवेदना एवं संस्कृति के साथ मुखर हो उठती है। वह कहती है-

"मेरी दृष्टि में स्वावलम्बी होने का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि वह परिवार को तोड़ डाले और उन सारी भावनाओं से मुकर जाय जो उसकी पहचान ही नहीं, उसकी जरूरत भी है। यह सही है कि रोटी पहली और सेक्स दूसरी जरूरत है इन्सान की जिससे मुकरना मुश्किल है। यह भी है कि सहज और सुन्दर प्रेम अभिव्यक्ति मर्द के साथ ही औरत कर सकती है। मगर प्रश्न तो सामने उससे भी जटिल है कि आज की औरत भूख लगने पर किसी भी तरह की रोटी आँख बंद करके खा ले या केवल वासना पूर्ति के लिए वह किसी के सामने घुटने टेक दे, असम्भव है।"[70]

नासिरा शर्माने इस उपन्यास में नारी संवेदना के उस रूप का उद्घाटन किया है जिस जगह नारी अपने संवेदनाओं के झंझावातों में संबंध तोड़ने पर आमादा हो जाती हैं किन्तु शाल्मली संबंध न तोड़कर नरेश को पति के जगह अतिथि मान लेती है। जिससे लेखिका का उद्देश्य भी पूरा हो जाता है और नारी के नारीत्व की अस्मिता भी बनी रहती है। शाल्मली पति के बंधन और अधिकार से खुद को मुक्त कर लेती है किन्तु बिना रिश्ता तोड़े एक ही घर में 'पेईंग गेस्ट' की तरह नरेश को स्वीकार भी कर लेती है। न खुद को स्वाहा किया न ही पुरुष की उपस्थिति को इन्कार एक ही घर में रहकर अपनी-अपनी संवेदनाओं और कर्तव्यों का दोनो निर्वहन करते रहे।

नारी का शिक्षित होना और स्वावलम्बी होना उसके उत्कर्ष का परिणाम होना चाहिए न की शिक्षा यह भाव जगाकर परिवार से अलग कर दे। नासिरा शर्मा का यह उपन्यास नारी संवेदना, स्वतंत्रता, शिक्षा, परंपरा का जितना पोषक सिध्ध हुआ है, उतना ही इस युग में प्रासंगिक भी है। यह आधुनिक युग में या समकालीन परिवेश

में संबंधों के टकराहट, तनाव और टूटते-बिखरते संबंधों को जोड़ने और नारी को एक नई शिक्षा नीति का पाठ पढ़ाने वाला उपन्यास साबित हुआ है इसमें कोई सन्देह नही है ।

इन्हीं तथ्यों को स्पष्ट करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं-

“स्त्रियों का इतिहास अब शुरू हुआ है। पहले हजारों सालों का इतिहास पुरुषों यानि मालिकों का इतिहास था जो कि स्वामी भक्ति के गौरव को बढ़ा-बढ़ाकर पेश करता था। इतिहास उनके होते हैं जो अपने फैसले खुद लेते हैं। पुराने शास्त्रों में नखशिख से लेकर स्त्रियों के सारे वर्गीकरण स्त्री की देह तक केन्द्रित है। वह या तो गुणगान कथाएँ हैं या धिक्कार कथाएँ है।"[71]

नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास में आज की समर्थ नारी को नये आयाम देने वाली ‘शाल्मली’ की जीवन की मर्म कथा बताई है।

इस उपन्यास के फ्लैप पर लिखा है--

“शाल्मली नासिरा शर्मा का एक ऐसा विशिष्ट उपन्यास है, जिसकी जमीन पर नारी का एक अलग और नया रूप उभरा है। शाल्मली इसमें परंपरांगत नायिका नहीं है। बल्कि वह अपनी मौजूदगी से यह अहसास जगाती है कि परिस्थितियों के साथ व्यक्ति का सरोकार चाहे जितना गहरा हो, पर उसे तोड़ दिए जाने के प्रति मौन स्वीकार नही होना चाहिए ।”[72]

आगे फ्लैप पर लिखा है।

“शाल्मली सेमल के दरख्त की तरह है जिसका अंश- अंश संसर्ग में आने वाले को जीवन-दान करता है। लेकिन उसका पति नरेश इस सच को स्वीकार करने की जगह अपनी कुण्ठांओं में जीता है, अपने स्वार्थ को शाल्मली के यथार्थ आचारण के ऊपर समझता है। वह हिसाबी-किताबी जीव है। लेकिन जिन्दगी की सच्चाई के साथ उसका समीकरण गहरा है।"[73]

शाल्मली उपन्यास में समकालीन नारी की संवेदना, सिकन का पूरा लेखा-जोखा प्रस्तुत है। लेखिका ने आधुनिक युग की माँग के जायज प्रश्नों को इस उपन्यास में उठाया है। जिससे पाठक के मस्तिष्क पर यह प्रश्न हमेशा तैरता रहता है कि स्त्री-पुरुष एक गाड़ी के दो पहिए हैं। एक की अनुपस्थिति में दूसरा अधूरा है। यहाँ न पितृ-सत्ता का विरोध है न ही अत्याचार सहने की यंत्रणा बल्कि स्त्री संवेदना का मुखर रूप अभिव्यक्त हुआ है जो नारी पाठक और पुरुष पाठक में विरोध के बजाय जागृति लाने का काम करेगा ।

ठीकरे की मंगनी उपन्यास में स्त्री संवेदना

ई०सन्-1889 में प्रकाशित यह उपन्यास नारी संवेदना का मनोवैज्ञानिक दस्तावेज है। नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास में 'महरुख' नामक शिक्षित और तार्किक स्त्री की कथा-व्याथा का वर्णन किया है। 'महरुख' एक ऐसी स्त्री-पात्र है जो आधुनिकता और स्वतंत्रता की परिभाषा को स्व के बंधन से मुक्त कराने की समर्थक है। 'वह आधुनिकता का बीज और स्वतंत्रता का डंका जमीनी स्तर पर स्थापित करना चाहती है अत: वह स्वतंत्रता को अकेले में न ढूंढकर समाज के उपेक्षित, निम्नवर्गीय, संघर्षरत, शोषितपात्र की मुक्ति से जोड़कर स्वतंत्रता को व्यापक फलक प्रदान करती है।

'ठीकरे की मंगनी उपन्यास की नायिका 'महरूख' शाल्मली की ही तरह धीर गम्भीर और आत्मनिर्भर स्त्री है। वह इतनी सजग और जागरूक है कि किसी भी पुरुष के न बहकावे में आती है न ही पारिवारिक बंधनों में बंधकर अपनी अभिलाषाओं को तिलांजलि देती है। बल्कि हौंसलों का पंख बांधकर सफलता और स्वतंत्रता की ऊँची उड़ान भरती है। महरुख अपनी उड़ान को अकेले ही गति नही देती वरन् समूचा निम्नवर्ग उसके उड़ान का हिस्सा होता है। ग्रामीण परिवेश से आगे बढ़ वह जब दिल्ली जैसे महानगर में 'इल्म' ग्रहण करती है तो उस इल्य को किताबों और

सेमिनारों में दफ़न हो जाने या तालियों की गड़गड़ाहट में गुम हो जाने हेतु नही छोड़ती बल्कि उसे यथार्थ के जमीन पर लाकर व्यवहार में प्रयोग करती है। मार्क्सवाद को महरूख, रफ़त भाई की तरह नहीं देखती उसको वह जीवनानुभूतियों में अप्लाई करती है। वह एक छोटे से गाँव में अपना घर बनाकर स्कूल शिक्षक की नौकरी करती है। नासिरा शर्मा का यह उपन्यास एक सामान्य सी लड़की के सौम्यता पूर्ण विद्रोह दास्तान है। कथा नायिका की बचपन में ही रफ़त नामक लड़के के साथ 'ठीकरे की मंगनी' हो जाती है। जीवन की तेज रफ्तार में रफ़त अन्य संबंधों में उलझकर अपनी मंगेतर 'महरुख' के संवेदनाओं का गला घोट देता है। वह बाद में महरूख से विवाह करने के लिए राजी होता है किन्तु महरुख अपने मंगेतर और परिवार की परवाह किए बगैर एक सोम्यतापूर्ण एवं विरान् जिन्दगी जीने लगती है। लेखिका ने इस उपन्यास में नारी के उस रूप का वर्णन किया है जहाँ उसको जीवन की सुविधा हेतु सारी वस्तुएँ चाहिए भोजन, शिक्षा, महानगरीय जीवन शैली, पति-पत्नि का पारस्परिक सहयोग, यौनसुचिता किन्तु किसी गलत पर नहीं, जूठन नहीं, संवेदनाओं को कुचलकर, प्रेम को छलकर, स्वार्थपरकता के शीर्ष पर चढ़कर सुविधाएँ आज की स्त्री को नही चाहिए।

महरुख वह पात्र है जो रिश्तों में मिलावट नही चाहती। उसका जिसके साथ जो संबंध हो उसी पर अडिग रहना भाता है किन्तु उसके जीवन में बचपन से ही जो संवेदनात्मक पल प्राप्त हुए, वे विश्वास के धरातल पर अंकुरित जरूर हुए पर मजबूत होने पर विषाक्त हो गये। अत: महरुख सोम्य विद्रोह युक्त पात्र के रूप मे जानी जा सकती है। उपन्यास के फ्लैप पर इस उपन्यास के संदर्भ में ठीक ही लिखा है-

"समकालीन लेखन की परिचित लेखिका 'नासिरा शर्मा' का यह एक ऐसा उपन्यास है। जिसमें महरुख की दास्तान के माध्यम से दो खिड़कियाँ खुलती हैं, जिनमें एक गाँव है, वहाँ का स्कूल है, गाँव के असहाय लोग है जिनके छोटे-छोटे

दुःखो से भी वह विचलित हो जाती है। दूसरी तरफ एक पारंपरिक मुस्लिम ख़ानदान है, उसमे रह रहे लोगों के अपने-अपने सरोकार और टकराव हैं। इन दोनो ही परिवेश से गुजरते हुए महरूख बदहवास दुनियाँ की सच्चे अर्थों में पड़ताल करती है और चुनती है अपने लिए उस थरथराते सत्य को जो उसे अकेला तो कर देता है, पर सशक्त ढंग से खड़ा होना सिखा देता है। औरत को जैसा होना चाहिए, उसी की कहानी यह उपन्यास कहता है।"[74]

रुढ़िवादी परंपरा की मानसिकता का शिकार हुई थीं महरूख जिसके जीवन का फैसला एक रुपये का सिक्का उछाल कर कर दिया गया था। महरुख को इस फैसले का इल्म भी नही था किन्तु अभिज्ञान होने के बाद भी वह रिश्ते को स्वीकारने से बाज नही आई थी वरन् वह उसमें रफ़त भाई के साथ सपने भी सँजोने लगी थी। महरुख को एक ऐसे जीवन साथी के साथ जीवन व्यतीत करने पर पारिवारिक रूप से मजबूर कर दिया गया था जिसकी रफ्तार रिश्तों की सीवन तक उधेड़ने से बाज नही आये थे किन्तु महरुख उन नारियों में से नही जो अत्याचार भी सहे और चुप भी रहे। उपन्यास के फ्लैप पर लिखा है-

"ठीकरे की मंगनी हुई थी महरुख की जन्म के साथ ही तेज रफ्तार जिन्दगी जीने वाले एक पुरुष की सत्ता को स्वीकारने के लिए मजबूर कर दिया गया था । उसकी जिन्दगी का सबसे बड़ा हादसा था यह. पर महरुख उस साँचे में ढली हुई थी, जिसे कोई तोड़ नहीं सकता। ठोस इरादे और नज़रिए ने उसे थोपी हुई सत्ता के खिलाफ खड़ा कर दिया।"[75]

उपन्यास की थीम को देखें तो स्पष्ट होता है कि नारी यहाँ चेतना के धरातल पर सजग और जागृत है। महरुख जीवन के हर मोड़ पर सम्भल कर कदम रखती है किन्तु हालात की मार एवं समय का चक्र इंसान को उसके सोचे हुए मुकाम पर लेजाकर एक ऐसी दहलीज़ पर खड़ा कर देता है जो उसे कल्पना में भी ग्राहय न थी।

नासिरा शर्मा उपन्यास के 'कथन' वाक्य में कहती है- "मेरा विश्वास है कि इन्सान दो बार जन्म लेता है, पहली बार माँ की कोख से और दूसरी बार हालत की मार से.. प्रत्येक व्यक्ति कुछ सोच कर आगे बढ़ने के लिए किसी एक दिशा की ओर कदम बढ़ाता है मगर हवा उसे किसी दूसरी दिशा की ओर उड़ा ले जाती है। बनना वह कुछ चाहता है और बन कुछ जाता है। इन्सान जैसा ऊपर से दिखता है, वैसा वह अन्दर से होता नही है। किसी भी व्यक्ति के अन्दर जरा-सा झाँकिए तो महसूस होगा कि तहखाने-दर-तहखाने, कोठरियाँ-दर-कोठरियाँ, गलियाँ-दर-गलियाँ और जाने कितने पुर-पेंच-खम रास्तों का जाल फैला है, जिस पर से वह चलकर यहाँ पहुँचा है, जहाँ पर आपसे उसकी मुलाकात होती है और आप-पल-भर में उसके व्यक्तित्व के बारे में। 'फतवा' दे बैठते हैं।"[76]

प्राक्कथन में ही लेखिका आगे लिखती हैं-

"हालात की मार से पैदा हुई एक लड़की 'महरुख' की यह कहानी है और दूसरी तरफ यह-कहानी रफ़तभाई की भी है, मगर दोनो में जो बुनियादी कडी है वह नजरिए का है। हालात प्रत्येक व्यक्ति को एक बार जिन्दगी के चौराहे पर लाकर खड़ा कर देते हैं और यही समय होता है जहाँ पर पहुँचकर इन्सान अपना रास्ता चुनता है। कुछ अपने को हालात के हवाले कर देते हैं, कुछ सर झुका देते हैं, कुछ अपने को मिटा देते हैं और कुछ इस टूटन को एक नया अर्थ देकर यह बताते हैं कि यही जीवन का अन्तिम चौराहा नही है इस लम्बी जिन्दगी में बहुत सारे चौराहे आपको मिलेंगें और यह आप होगें, जो अपने रास्ते को पहचानते नाक की सीध में चलते हुए अपनी मंजिल पर पहुंचेंगे।"[77]

नारी संवेदना की यथार्थ दृष्टि लिए हुए उत्पन्न स्त्री है 'महरुख' जो इसी रास्ते पर चलकर अपनी मुक्ति के साथ - साथ नारी मुक्ति की मुख्य आवाज बनती है।

इस उपन्यास की कथा नायिका 'महरुख' है। जैदी खानदान की नायाब मोती। इस खानदान में लग-भग चार पीढ़ियों से लड़की के जन्म का अकाल पड़ा था। यहाँ तो लड़कियाँ पैदा ही नहीं होती थी पैदा भी हुई तो बचपन में ही उनकी मृत्यु हो जाती थी इसलिए महरुख की कानपुर वाली खाला ने उसके पैदा होते ही 'टोटके' के रूप में गंदगी से भरे ठीकरे की एक रुपया चाँदी का सिक्का फैंककर मंगनी कर दी और यह घोषणा कर दिया कि आज से यह लड़की मेरे घर की बहू है ताकि टोटके के कारण उसका जीवन सुरक्षित रहे।

पूरा जैदी खानदान कई दशकों के बाद 'चाँद-से-चेहरेवाली' (महरुख) को पाकर निहाल हो गया। बेटी का जन्म नही वरन् एक नए त्योहार की शुरुआत हुई हो ऐसा जान पड़ता है। नया-चाँद उदय हुआ कि तत्काल चारों तरफ से महरुख की पुकार होने लगती है। दादा-दादी चाँद को देखते ही आँखे बंद करके दुआ पढ़ने लगते हैं यहाँ तक कि महरुख के दादा सुबह पोती का चेहरा देखने के बाद ही बिस्तर छोड़ते थे। महरुख का लालन-पालन एक शौक की तरह होता है। महरूख की पैदाईश के बाद तले-ऊपर चार लड़कियों का जन्म हुआ। रेशमा, सनोवर, गुलनार और शहनाज उसके बाद लड़कों की बारी आई- अब्बास और हैदर कुल मिलाकर घर के बाइस बच्चों की वह सिपहसलार थी जिसके कारण अड़ोस-पड़ोस के बच्चों की हिम्मत नहीं होती थी कि वे महरूख-सेना का किसी भी मामले में मुकाबला कर सकें। सेनापति महरुख का संकेत पाते ही सारी सेना मिनटों में सबका काम तमाम कर देती थी। लेखिका ने महरुख के जन्म से ही उसके प्रतिनिधित्व का संकेत दे दिया है।

महरूख ने कक्षा दस की परीक्षा पास कर लिया उसके बाद ही उसे पता चला कि कानपुर वाली खाला के बेटे रकत भाई के साथ उसकी मंगनी हो गई है। जब वह बारहवी में आई तब उसे 'रकट मियाँ' को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। रफ़त कद-काठी से गबरू-जवान लगता था। वह एम० ए० प्रथम वर्ष में पढ़ता था। जब 'रफ़त' ने

कहा कि -महरुख को आगे पढ़ना चाहिए वह कुछ करे आगे बढ़े। मैं उसे दिल्ली में दाखिला दिलवा दूँगा। रफ़त की माँ आगे कहती है-

"महरुख को आगे पढ़ाना खालिदा । शाहिदा खाला ने चलते हुए बहन से कहा। कहने का मतलब साफ था कि लड़के की ख्वाहिश है किसी को क्या ऐतराज था। बालीका पाती थी, पढ़ने में अच्छी थी, शादी की बात तय थी, जुलाई में बी.ए. में महरुख को दाखिला मिल गया।"[78]

महरुख का यूँ बिना शादी किए रफ़त के साथ दिल्ली भेजना गाँव के संस्कार के खिलाफ था। महरुख के चचा-चाची आदि ने विरोध किया कि यूँ कुवाँरी लड़की का बड़े शहर में अकेले भेजना उचित नही है। महरुख की अम्मी उसको शहर भेजना चाहती थी कारण कि रफ़त शादी से साफ इंकार कर दिया था। उसका मानना था कि महगाई के इस दौर में बड़े शहरों में रहना इतना आसान नही है अत: पति-पत्नी दोनो को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना चाहिए ।।

"ऐसी नाजुक स्थिति में रफ़त के कहने को किस खूबसूरती से टाला जाए, जो साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे, यह सब सोचकर अमजद परेशान थे ।"[79]

महरुख को दिल्ली बिना शादी के भेजने का विरोध चाचा और अब्बू दोनों कर रहे थे। उनका मानना है कि सर का बोझ हलका करना है तो अपनी मर्यादा को कुएँ में झोकना उचित नहीं है। उसकी रफत के साथ शादी कर दो फिर दिल्ली भेजो। अमजद मियाँ अपनी आर्थिक स्थिति को लेकर परेशान थे कि, अभी चार लड़कियों के हाथ पीले करने हैं ऐसे में महरुख का निकाह हो जाय तो ठीक रहेगा, अत: अपनी पत्नी की राय पूँछते हैं

"मेरी मानो तो अल्लाह का नाम लेकर लड़की को रवाना कर दो। आखिर सगा खालाजाद भाई है कोई दुश्मन तो नहीं फिर कल बीबी भी उसी की बनेगी जो करेगा अपने भले-बुरे की सोचकर करेगा ।"[80]

अमजद मियाँ उत्तर देते हैं-

"लाख वह गैर नहीं मगर कुँवारी लड़की को दूसरे शहर यूँ पढ़ने भेजना खानदान में कोई इस बात को हजम नहीं कर पाएगा। ऐतराज की बौछार से हम बच नहीं पाएंगे।"[81]

नासिरा शर्मा पति-पत्नी के माध्यम से नारी संवेदना की अभिव्यक्ति, पुरुष से नारी का संवाद करवाकर व्यक्त करती हैं जहाँ नारियों की संवेदनाऐ तहख़ानों में दफन होजाते है। वहीं लेखिका का यह उपन्यास कुशल संवाद योजना से नारी स्वतंत्रता की बिगुल फूँकता है। यहाँ महरुख की माँ ने पुराने जमाने की होते हुए भी, पुरुष के सामने निर्भीकता से अपने प्रश्नों को जिन्दा भी रखा है और मर्यादा का ध्यान रखकर बेटी की स्वतंत्रता का पक्ष भी लिया है जिसमें पितृसत्ता का विरोध नही बल्कि सहयोग और सहकार दृष्टिगोचर होता है ।

महरुख की माँ पति से कहती है-

"मैं औरत हूँ खूब अच्छी तरह से जानती हूँ कि इस नए दौर में औरत के लिए मजबूती क्या होनी चाहिए। जमाने के कहने से क्या हमने लड़कियाँ स्कूल से निकलवा ली थीं अपने ही दोस्त के घर नजर डालो नसरीन के मियाँ उसे छोड़कर दूसरी शादी कर ली। बीबी चुपचाप मायके आन बैठी है। उसी जगह सालेहा को देखो, पढ़ी-लिखी है, मियाँ को नकेल घसीटकर रखती है। कहने को दोनो चचाजाद बहनें हैं, एक खानदान, एक माहोल और एक तरह की परवरिश मगर तालीम से समझ तो बढ़ी अपना हक तो पहचाना-गलत तेजी की तरफदार तो मैं भी नही हूँ मगर लड़की अपना अच्छा बुरा समझे यह अक्ल तो तालीम ही दे सकती है।"[82]

सर्वव्याप्त है कि औरत ही औरत की दुश्मन होती है किन्तु यह उपन्यास इस मान्यता को सिरे से खारिज करता है। इसके सभी पुरुष पाल, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दकियानूसी खयालात, रुढिवादी मानसिकता या फिर मानसिक रूप से पंगु, स्वार्थ

परक चरित्र के हैं किन्तु नारी के पक्ष में नारी की वकालत करता यह उपन्यास निश्चित तौर पर हिन्दी साहित्य का अप्रतिम उपन्यास है। महरुख को दिल्ली भेजने की वकालत से लेकर आखिरी पड़ाव तक उसकी माँ तार्किक रूप से उसके पक्ष का मण्डन एवं विपक्ष का खण्डन करती नजर आती है। जब महरुख की माँ अमजद मियाँ से कहती है कि हमें एक ऐसा दामाद चाहिए जो बेटी का खयाल रखे। उसकी खुशी चाहे और रफ़त में यह सब गुण है। यदि रफ़त चाहता है उसकी बीबी पढ़े-लिखे तो महरूख को घर बैठाने में मुझे कोई फायदा नही जान पड़ता। लकीर का फकीर बने रहना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? आप एक बार अम्मीजान की राय जरूर ले लें ? वे महरुख की माँ और दादी दोनों है। रात को अमजद मियाँ अपनी माँ से महरुख को दिल्ली भेजने का जिक्र करते हैं तो वह कहती हैं- "बात सुनने में मुझे तो कोई गैरमुनासिब-सी लगती नहीं हैं जो हालात हैं उनकी रोशनी में मसले का हल भी यही है। मेरी नजर में महरुख को भेजने में कोई हर्ज नहीं है इस बात को यूँ सोचकर देखो कि तुम लड़की को आला तालीम के लिए भेज रहे हो। यह सोचकर क्यों परेशान हो रहे हो कि रफत मियां के हवाले कर रहे हो?"[83]

उपन्यास की सभी स्त्री-पात्र नारी की भलाई उसके तालीम के माध्यम से जोड़कर देखने की पक्षधर हैं। आधुनिकता का मतलब सिर्फ सुविधा संपन्न होना ही नही होता है' वरन् वैचारिक और बौद्धिक रूप से स्वतंत्र एवं परिष्कृत होना भी आधुनिकता का मूल तत्व है। पुरुषों की धारणा इस उपन्यास में संकुचित है। जब अमजद मियाँ अपने भाईयों से महरूख को दिल्ली भेजने की बात करते हैं तो उनका जवाब होता है - “मियाँ, होश के नाखून लो! महरूख लड़की है शाहिद और राशिद की तरह लड़का नहीं।"[84]

अमजद भाईयों की बात को काटकर बीच में ही बोलते हैं-

"वह तो मैं भी जानता हूँ भाई साहब मगर लड़की है यह मानकर उसे कब तक बिठाए रखूँगा।"[85]

अन्ततः महरुख का दिल्ली जाना तय हो गया वह अपना सामान लेकर घर से निकलने वाली होती है तो माँ के आँखों से औलाद के प्रति उमड़ी ममता आँसुओं का शैलाब उठा देता है। नासिरा जी ने नारी संवेदना को विभिन्न दृष्टिकोणों से रूपायित करने की सफल कोशिश की है। महरुख की विदाई में एक तरफ जहाँ माँ की ममता और औलाद की जुदाई का कारूणिक रूप उभरता है, वहीं दादी के माध्यम से एक सुलझी हुई नारी का किरदार भी। नारी की धैर्यता और उदारता दोनो का सकल अंकन हुआ है इस उपन्यास में । दादी बहु के आँसू देखकर खुद को सम्हा हुए कहती हैं-

दुल्हन लड़की को जब आला तालीम के लिए भेज रही हो, तो फिर ये आंसू क्यों ? दादी की रोबदार आवाज गूँजी । उन्हें महरुख का अपने से यूँ जुदा होना बहुत खल रहा था मगर वक्त की नज़ाकत को वह खूब समझती थीं। वह जमाना कब का लद चुका है जब औरत नए-नए पकवान बनाकर ससुराल वालों की खिदमत करके मियां का दिल जीतती थीं आज तो उसे इन सब के साथ बाहरी दुनियां में भी अपने पैर जमाने हैं। घर-बाहर दोनों जगह अपनी खूबी का सिक्का जमाना होता है फिर पढ़ी-लिखी लड़कियां किसी पर बोझ बनकर नहीं रहतीं बल्कि गिरे वक्त में घर को मर्द की तरह सम्भालती हैं।"[86]

लेखिका ने इस उपन्यास की सभी महिला पात्रों का स्वर इंनकार में कड़ा रखा है, क्योंकि इनकार की आवाज नरम होगी तो न्याय नही सिर्फ भीख मिलेगी, वे 'औरत के लिए औरत नामक पुस्तक में' 'शब्द-भाषा-औरत-अभिव्यक्ति" नामक शीर्षक लेख में कहती हैं–

"इंनकार का स्वर रजामंदी की तरह नरम नहीं होना चाहिए बल्कि उसमें कड़ी चेतावनी जैसा नकारात्मक स्वर होना चाहिए । वरना आपके सारे सबूत आपके विरोध

में जाएंगे क्योंकि आपकी व्यक्तिगत इच्छा को व्यक्त करने वाली भाषा ही जब आपकी भावना का उचित साथ न दे रही हो तो फिर कानून भी आपका रक्षक कैसे हो सकता है ।"[87]

इनकार और रजामंदी में प्रयुक्त भाषा के स्वर का सुन्दर प्रयोग ही कथा-नायिका (महरुख) को गाँव की गलियों से उठाकर उच्च तालीम लेने हेतु दिल्ली जैसे महानगर के सबसे बेहतरीन विश्वविद्यालय के कैंपस में खड़ा कर देता है। एक लड़की का अपनी तालीम को लेकर इतना उत्साह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। नारी-मन शिक्षा की संपूर्ण स्वतंत्रता पाकर कितना संवेदनशील हो उठता है इसका सशक्त उदाहरण है 'ठीकरे की मंगनी उपन्यास-

"महरुख के रुके कदम हरफ़त में आ गये। उसका दिल बल्लियों उछलने लगा दिल्ली जाना है। मै तो कभी लखनऊ तक नहीं गई। अम्मू मियाँ बुला-बुलाकर थक गए कैसी होगी दिल्ली ! दिल्ली से वह एम०ए० करेगी। कितनी बड़ी डिग्री मानी जाएगी एम० ए० की वह भी दिल्ली से।"[88]

पुरातनता, परंपरा की जड़ो को तोड़ना और आधुनिकता की आपा-धापी में कदम-से कदम मिलाकर चलने की हिदायत 'रफत भाई' पूरे रास्ते महरूख को सिखाते आ रहे थे, उनका मानना है कि जहाँ पर जीवन आधुनिकता पर कायम है, वहाँ वह नए अहसासो में पलती है सिसकती नहीं है। वह बोसीदा रस्मों के सामने सर झुकाती नहीं है वरन् पुख्ता इरादों के अंगारों पर चलती जिन्दगी हँसती है। यह जातीय भेद-भाव, अमीर- गरीब का फर्क, धर्म के नाम पर ठीकेदारों का अलगाव, दकियानूसी खयालात हैं। महरुख हमें इससे लड़ना है। तुम सिमटी हुई मत रहो क्योंकि चूँड़ियाँ छनकाती कलाइयाँ शायरों की ख्वाब हो सकती हैं मगर हँसिया थामे कलाई की अपनी हकीकत होती है। जिससे गिरते पसीने की हर बूंद की सुन्दरता शायरों की कल्पना से ज्यादा मूल्यवान होती है।

परंपरावादी मुस्लिम परिवार की बेटी महरुख भी है जहाँ पति को ही परमेश्वर माना जाता था। महरुख इस बात से व निश्चित खुश थी कि उसका भावी शोहर उसके साथ है, किन्तु उसका भ्रम तब टूट जाता है जब रफत भाई विश्वविधालय में महरुख का परिचय यह कहकर कराते हैं कि - "यह मेरी कजिन है महरुख जैदी तीन फर्स्ट क्लास और दो-तीन डिक्टिक्शन्स...। भावी पति और मंगेतर वाली बात वह साफ उड़ा गये।"[89]

महरुख को विश्वविधालय का माहौल अजीबो-गरीब लगा किन्तु रफतभाई का मन रखने के लिए वह अपने-आप को उसमें ढालने की कोशिश करने लगी। विश्वविधालय में माओ, स्तालिन, लेनिन के विचारों पर बड़ी बहसें होती थीं जिसका व्यावहारिक पक्ष बिल्कुल शून्य था महरुख को इन बड़ी-बड़ी किन्तु खोखली बातों पर हँसी आती थी वह रफ़तभाई को समझाना चाहती है कि सुख-सुविधाओं में रहकर इन विषयों परगरीबी, भुखमरी, वर्गभेद, वर्ग-संघर्ष की बातें करना फिजूल है। जिसका कोई वास्तविक बदलाव एवं जमीनी हकीकत न हो किन्तु रफ़त के सामने वह कुछ बोल नहीं पाती। महरुख अपना स्वतंत्र विचार और निजी संवेदना रखते हुए खुद को विश्व-विद्यालय के परिवेश में मिलाना प्रारंभ करती है शायद कुछ अन्दर से अच्छाई हो। उदाहरणार्थ- वह अंग्रेजी मे अपनी अभिव्यक्ति प्रदान करने लगी। लड़के-लड़कियों के साथ उठना-बैठना, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर वाद-विवाद करना, बुर्के की संस्कृति को छोड़ पाश्चात्य लिवास धारण करना आदि। रफ़त मियाँ के पसंद के हिसाब से महरुख पूर्ण आधुनिक बाहर से दिखने लगी थी उसी समय उसकी मित्रता रवि नामक व्यक्ति से होती है जो महरुख का क्लासमेट था। एक ही विषय पर दोनों अलग-अलग दृष्टिकोणों से थिसिस लिख रहे थे। फील्ड वर्क करने भी विभाग की तरफ से दोनों साथ जाते है। रवि के साथ चंद महीनों में ही महरूख दिल्ली का ज्यादातर क्षेत्रफल नाप चुकी थी किन्तु दो स्त्री की आड़ में रवि महकर्ष से गलत अपेक्षाएँ रखता है।

महरुख उसकी इस नापाक कोशिश को सफल नही होने देती है। वह सोचती है - "यदि दो लड़कों की मित्रता इस स्तर पर होती तो क्या वह भी इस नतीजे पर पहुँचती फिर लड़की के साथ दोस्ती का मानवीय संदर्भ अपने अर्थ क्यों खोने लगता है और बँधे-बंधाए रास्ते पर चल पड़ता है। उसे हैरत होती है कि इस विश्वविद्यालय में भी औरत को देखने वाली नजरों का पुराना दृष्टिकोण है तो फिर यह स्वयं को किस अर्थ में स्वतंत्र और प्रगतिशील कहते हैं?"[90]

ऊँची तालीम व्यक्ति को आत्मसम्मान के खातिर वह शक्ति प्रदान करती है जिससे वह नकाब के पीछे के चेहरे का पर्दाफाँस कर सके साथ ही साथ अपनी सुरक्षा भी। शिक्षा व्यक्ति के अन्त:चक्षु को खोलने का सबसे सरल साधन होती है किन्तु इतने बड़े विश्वविधालय में इल्म प्राप्त पुरुषों की सोच इतनी छोटी और छिछली है कि महरुख को इससे घृणा होने लगी एक तरफ रवि जैसे मानसिक रोगी इस वातावरण से सिर्फ गंदगी चुन रहे थे तो दूसरी तरफ महरूख इन अनुभवों से अपनी दृष्टि का निर्माण कर रही थी। रफ़त भाई अपनी एम. फिल की थीसिस में इतने मशगूल थे कि महरुख का कोई खबर-पता ही ना ले सके। महरुख रवि के साथ हुई घटना से इतनी आहत थी कि वह खुद को सिर्फ पुस्तकालय तक सीमित रखती थी। उसे रफ़त पर क्रोध आता था कि क्या जरूरत थी कजिन कहने की अगर मंगेतर वाली बात वे ना छुपाते तो शायद रवि ऐसी हरकत न करता ।

महरूख अपने जन्म दिन के तिथि को याद कर सिहर उठती थी कि रफ़त मियाँ मुझे कपड़े गिफ्ट में देकर एक जज़्बाती चुम्बन गर्दन के पास में रख दिए थे कितना सुकून था उनके स्पर्श में किन्तु दूसरे ही क्षण पुरुष कितना अवसरवादी होता है जहाँ उसका फायदा हो वहाँ अपनी अभिव्यक्ति साफ जाहिए कर देता है और जहाँ चार सवाल उठने का डर हो वहाँ रिश्ते को छुपाने से भी बाज नहीं आता।

नारी मन की सबसे बड़ी खूबसूरती यह है कि वह अपने ऊपर हुए अत्याचार या मानसिक शोषण को बिना वजह तमाशा नही बनाना चाहती इसलिए महरुख रवि वाली घटना को नजरंदाज करती रही किन्तु रवि जब भी डिपार्टमेंट, सेमिनार हाल, अथवा सड़क पर महरुख को देख लेता तो एक व्यंग्यात्मक हँसी हँस देता। महरुख इससे संवेदनात्मक रूप से गहरे आहत होती थी। वक्त के साथ महरुख अपने मन पर घिरे परेशानी के बादलों को छाँट देती है। वह सोचती है कि शर्म उसे आनी चाहिए जिसने ऐसी हरकत की हो, मै तो नाहक खुद को इस चिंता में घुला रही हूँ महरुख शिक्षा के इन माओ, लेनिन, स्टालिन के खोखले विचार धारा एवं आधुनिकता के नंगे नाच से खुद को अलग रखने का निर्णय लेती है और संकल्प करते हुए कहती है--

"अब उसे अपने को ऊपर से भी ऐसा ही बनाना है जैसी वह अन्दर से है। जो महरूख तो हो, मगर साथ ही इस माहौल की चुनौतियों का सामना करने के लिए सीना तानकर खड़ी हो सके, आते हुए तीरों को कुन्द कर सके और अपने ढाल जैसे व्यक्तित्व पर उसका कोई निशान तक न पड़ने दे।"[91]

एक दिन रफत मियाँ महरुख को संदेश देने आते और बोले की मै तीन वर्ष तक पी० एच०डी० करने अमेरिका स्कोलरशिप पर जा रहा हूँ। महरूख के घर वालो का मानना था कि महरुख से शादी करने के बाद अमेरिका प्रस्थान करें किन्तु रफ़त ने व्यावहारिक दृष्टि से इसे अनुचित करार देते हुए वापस आने पर ही शादी की रस्म पूरा करने के पक्ष में था। जब वह एयरपोर्ट पर सभी साथियों से हाय, हलो करता हुआ जाने लगा तब भी महरुख अपने दिल की बात उससे नहीं बता सकी। इधर महरुख रफ़त मियाँ के साथ जीवन व्यतीत करने के सुनहले सपने सजा रही थी तभी उसे पता चलता है कि रफ़त मियाँ ने बैलरी नामक अमेरिकन लड़की से विवाह कर लिया है। उसके सपनों का महल टूट जाता है। महरुख को अचानक विश्वास नही होता है कि रफ़तभाई भी ऐसा कर सकते हैं किन्तु उनके दोस्तों ने अमेरिका से आई

कुछ तस्वीरें महरुख को दिखाया तो उसके पैरों तले से जमीन खिसक गई। लेखिका ने नारी को संवेदनात्मक रूप से इतनी सुदृढ़ता से गढ़ा है इस उपन्यास में कि वह टूटने के पूर्व संचेतन हो उठती है- "इंसानी रिश्ते भी कागज की नाव की तरह होते हैं। जो सारी एहतियात के बाद हालात के समन्दर में डूब जाते हैं।"[92]

लेखिका ने रफ़त मियाँ से मिले धोखे के कारण यदि महरुख को शोक के अतल गहराई में उतारकर एक आम औरत की तरह उसके टूटन की कथा उठाती तो, उपन्यास शायद साधारण कोटि का होता किन्तु उनकी स्त्री-पात्र चेतना के साथ हृदय पक्ष रखती है न कि भावुकता के विशाल समन्दर में बुद्धि और विवेक को तिलांजलि देने वाली अबला नारी का किरदार ।

गर्मी की छुट्टीयों में महरुख अपने घर वापस आती है और फिर दिल्ली वापस न जाने का निर्णय लेती है। वह किसी छोटे-मोटे स्कूल में नौकरी करके सामान्य रूप से जीवन निर्वहन करने की चाह अपने माता-पिता के सामने रखती है। महरुख ही नहीं पूरा जैदी खानदान रफ़त मियाँ के इस अनैतिक व्यवहार से क्रुद्ध एवं मानसिक रूप आहत था। बेटी के प्रति सब के मन में गहरी संवेदना थी किन्तु उसके नाजुक जान को ठेस न पहुँचे इसलिए घर का कोई सदस्य रफ़त मियाँ के कृत्य एवं उसके घर का जिक्र तक नही करता था। ताऊ जी, बुआ एवं महरुख की माँ मन ही मन सोचते की काश यह ठीकरे ही मंगनी न हुई होती।

पूरे एक वर्ष के बाद महरुख को किसी कस्बे के एक स्कूल में नौकरी मिलती है। महरुख इतनी पाक-साफ और पवित्र दिखती थी कि उसके चेहरे पर नमाज पढी जा सकती है। वह अकेले इस गाँव में तन्ध जीवन गुजारने लगी। सादा रहन-सहन और पोशाक की सादगी ने महरुख को शहर की खोखली और अनैतिक, असंवेदनशील परिवेश से उठाकर शान्ति के स्वर्ग में बिठा दिया। यहाँ सुविधाएँ कम जरूर थी पर इज्जत और सम्मान की कोई कमी नहीं।

महरूख अपने नये जीवन का शुभारंभ इसी गाँव से करती है। उसमें इस गाँव के स्कूल में अपने-आप को पूर्ण रूप से समो दिया। पहले-पहल महरुख को ऐसा जान पड़ता था कि रफ़त मियां की यादों को समाप्त करने का यह गाँव और स्कूल अच्छा साधन सकता है किन्तु दूसरी और समस्याएँ उसका पीछा करेंगी इसका उसे अनुमान भी नहीं था। स्कूल के ही कुछ महिला और पुरुष सहकर्मी अरोड़ा, संजय, सुल्ताना आदि से उसे अनेको प्रकार की ज्यादतियाँ सहनी पड़ी। संजय और अरोड़ा ने तो एक रात महरुख का दरवाजा खटखटाकर शिक्षण और शिक्षक की मर्यादा का पूर्ण अनादर किया जिसका सबक गाँव के गणपत चाचा ने उनको बराबर फूटकर सिखाया।

महरुख अपने जीवन को सिर्फ अपना जीवन या अपना सुख समझकर जीना छोड़ चुकी थी वह एक ऐसी भूमिका को अदा कर रही थी जिससे समूची नारी जाति को सम्मान मिले जो दया और करुणा के कारण किसी पुरुष या स्त्री के एहसान की वस्तु न होकर नारित्व की मर्यादा और युक्ति की प्रवक्ता होने का मान स्थापित करे महरूख का संवेदनालक परिचय इस गाँव में सबसे पहले लक्ष्मिनिया से होती है। लक्ष्मिनिया महरूख की सेवा दिलोजान से करती है। आगे चलकर यही गाँव और स्कूल ने महरुख को डॉ॰विमला, रचना, आदि जैसे संवेदनशील दोस्त भी दिये। महरुख समाज सेवा और स्कूल की सेवा में पूरी तरह घुल चुकी थी उसी समय रफ़त मियाँ अमेरिका से अपनी अमेरिकी पत्नी को तलाक देकर और डिग्री लेकर भारत वापस आ गया। सबके साथ रफ़त को लगा कि डिग्री देखकर महरुख भी खुश हो जायेगी किन्तु महरुख अन्दर ही अन्दर सोचती है- “जिस महरूख को पूरा खानदान बचपन से मुझपर लादता आया था, वह महरुख मे नहीं भी। मुझे साँस ही कब किसी ने लेने दी, जो मैं अपने अन्दर छीपी लड़की को ढूंढ़ती, समझती, पाती और पहचानती। आज जब मैने अपने को पहचान लिया है, उस लड़की को पा लिया है जो

मेरे अन्दर है। जिसका सही नाम महरूख है में दावे के साथ कह सकती हूँ कि उसकी पहचान जो भी हो मगर रफ़तभाई हरगिज नहीं है।"[93]

रफ़त मियाँ को लगा क्यों न महरुख के स्कूल वाले गाँव घूम आया जाय और इसी बहाने महरुख के करीब आने की बुनियाद भी मजबूत की जा सकती है अत: रफ़त महरूख के पास पहुँच जाता है। थोड़ा समय गुजरुने बाद वह मुहरुख से पूछता है कि हमारे रिश्ते के बारे में तुमने क्या सोचा है ? हमने एक साथ एक आशियाने का ख्वाब देखा था। रफ़तने भारी, मगर आहिस्ता आवाज में बोला।

महरूख उसका जवाब देते हुए कहती है- "घर का मतलब अगर ईंट, गारे, पत्थर की चहार दीवारी होता है और शौहर का मतलब जिन्दगी की बुनियादी जरूरतों का जरिया, तो फिर वे दोनों चीजें मेरे पास मौजूद है। यह दीवारें, नौकरी जो मेरा सहारा है।"[94]

लेखिका नासिरा शर्मा ने रफत और महरूख के माध्यम से स्त्री और पुरुष के बीच जो संवाद नियोजित किया है उससे यह साबित हो जाता है कि नासिरा शर्मा और उनकी स्त्री पात्र पुरुष विरोधी नहीं बल्कि कुत्सित पुरुष मानसिकता विरोधी है। रफ़त महरुख से सवाल करता है - "और इन्सान की आदिम जरूरतें ?"[95]

महरुख कहती है- "उसकी जरूरत को भी नकारा नही जा सकता है रफ़त भाई मगर समझौते के तहत... उसकी जरूरत तो तब महसूस होती है जब दिल में कशिश हो। मैं उम्र के उस दौर से बाहर निकल आई हूँ। जब इंसान यह राज भी जान लेने के लिए बेचैन हो उठता है।"[96]

रफ़त कहता है- "क्या तुम्हारे दिल में मर्द के लिए नकरत पैदा हो गई है? "97

"नही, बिल्कुल नही औरत की जिन्दगी के सारे करीबी व जज्बाती रिश्ते मर्द से ही होते हैं। बाप, भाई, शौहर महबूब, बेटा जैसी अहमियत को नकार कर औरत कहाँ जायेगी रफ़त भाई ? सवाल मर्द से नफरत का नहीं है। बल्कि सवाल यह उठता

है कि मैं आपके ख्वाबों में बसे घर की मालकिन बन सकती हूँ या नहीं ? मुझे लगता है यह नामुमकिन है।"[98]

कथा-नायिका ने दो टूक शब्दों में पुरुष सत्ता के अवसरवादी मनसूबों के सिपहसलार रफ़त मियाँ को जवाब दिया - "आप शादी कर लें रफ़तभाई आपने हमेशा एक घर का ख्वाब देखा हैं, आपको उसे पूरा करना चाहिए। सफर को अधूरा छोड़ना मेरी नजर में एक गलत फैसला होगा। आपने मुझे अपना ख्वाब बताया था, इसलिए मैने कभी ख्वाब देखा ही नहीं। यूँ कहूँ कि मुझे अलग से ख्वाब देखने की जरूरत नही महसूस हुई, क्योंकि आपका खीचा नक्शा मेरे पास था, मगर अफसोस वह नक्शा कहीं खो गया और अब मेरे दिल व दिमाग से धुल गया है। मेरे पास कोई ख्वाब आपको लेकर या जिन्दगी को लेकर जो कुछ मेरा है उसे जो भी कह लें, ख्वाब या हकीकत वह यह गाँव है, यहाँ के लोग हैं, यह नौकरी जो मेरी पहचान है, जो मेरा भविष्य और वर्तमान है"।[99]

महरुख की उदासीनता देखकर रफ़त दिल्ली वापस आ जाता है। वह सोचता है- मैं साम्यवाद को किताबों और सेमिनारों में ढूंढ़ता रहा किन्तु महरुख ने उसे इस गाँव में ढूंढ़ा भी और अपने जीवन में अमल भी किया। सीधी-सादी जिन्दगी, जहाँ कुछ भी पाने की ललक उसे नहीं है, सिर्फ सेवा और देना ही मकसद है। वह कुछ दिन बाद स्वयं ही इस दिनचर्या से ऊब जाएगी। ऐसा नीरस जीवन सबको रास भी नही आ सकता है, वरना इतना पढ़ने और दुनिया देखने से क्या फायदा हुआ ? गर्मी की छुट्टी में मुलाकात फिर होगी ऐसा कहकर और एक विश्वास मन में बिठाए रफ़त वापस दिल्ली आकर नौकरी की तलाश में जुट जाता है। काबिलीयत और योग्यता रफ़त मियाँ में थी ही, वह दिल्ली के किसी कॉलेज में लेक्चरर हो जाता है। महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व का होने के नाते रफ़त कुछ अपनी डिग्री राजनैतिक सहारे से किसी विश्वविधालय में पहुँच जाने के लिए प्रयासरत भी रहता है।

एक वर्ष के बाद गुलनार के विवाह के मौके पर पूरा जैदी खानदान एकत्रित हुआ था। तब रफ़त भाई ने महरूख से एक बार फिर रिश्ते के ढीले पड़े सीलवट को कसने की बात समझाते हैं मगर महरुख जवाब में कहती है-

“आपने मुझे माफ कर दिया मगर मैं तो अपने को नही माँफ कर पाई रफ़त भाई। बिना रूह का जिस्म मुर्दा होता है और बिना अहसास का रिश्ता ठंण्डा समझौता। जहाँ सब कुछ होगा मगर जान नहीं होगी, जिन्दगी नहीं होगी। ऐसी मुर्दा के साथ आप भी जिन्दगी नहीं गुजारना चाहेगें और मै तो... ।”[100]

रफ़त मियाँ को एक बार फिर नारीत्व ने झटका दिया। नासिरा शर्मा की स्त्री पात्र हैसियत और हकीकत के जमीन के ऊपर नारी की संवेदना को स्वाभिमान के जमीर को जिन्दा रखते हुए अपने आत्मसम्मान की रक्षा करती प्रतीत होती है।

महरुख का इनकार रफ़त को जेहनी तौर पर झटका देता है। वह अपने आप को नगण्य महसूस करता है। महरुख के लिए सलमान साहब के भाई का रिश्ता भी आया था किन्तु वह उसे स्वीकार नही करती है। एक दिन रफ़त मियाँ ने समूचे परिवार वालों के सामने आकर महरुख को संबोधित करते हुए पूछाँ कि यदि महरूख के जीवन में कोई ओर या गया हो तो वह खुशी से उससे अलग हो जाएगा। महरुख स्वाभिमानी लड़की है वह इस प्रकार के इल्जाम से तमतामा उठी। उसके लिए चरित्र पर लांछन लगाना मौत को गले लगाने जैसा था। वह अपने अब्बू का सम्मान रखते हुए कहती है- “आखिरी बार जब मैं सबके सामने खासकर अब्बू, मैं आपसे कह रही हूँ कि रफ़त साहब सिर्फ मेरे बड़े भाई हैं। मैं उनको अपने बुजुर्ग की तरह देखती हूँ, बस ! चेहरे की तमतमाहट आंखों से टपकता फ़ैसला खड़े होने का अंदाज और आवाज में आत्मविश्वास इन सब ने पल-भर में ही मसले को हल कर दिया था।”[101]

चारित्रिक रूप से कथा नायिका इतनी सजग है कि जहाँ स्त्री के स्वभिमान और चरित्र पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगता है वहाँ वह अपना लहजा एवं इंकार का स्वर

तीखा ही रखती है स्त्री संवेदना की वकालत करती हुई लेखिका ने भले ही उपन्यास की शुरुआत 'ठीकरे की मंगनी से की हो किन्तु इसके अन्त में नारी अपना निर्णय स्वयं करती है। अपने जीवन की नौका को अपने आत्मविश्वास की पतवार से पार लगाती नजर आती है। उसके सुदृढ़ इच्छाशक्ति एवं कर्म की काबिलियत ने 'ठीकरे की मंगनी' को हवा में उछाल दिया। परंपरागत जैदी खानदान के लिए यह हादसा जितना शर्मनाक था, उतना ही हैरतअंगेज भी कि एक औरत ने मर्द को ठुकरा दिया। इसके बाद महरुख के लिए दो और पैगाम आए किन्तु उसने साफ मना कर दिया।

उपन्यास के अन्त में रफ़त दिल्ली विश्वविधालय में प्रोफेसर हो जाता है और बनारस के एक सैयद खानदान की बारहवीं पढ़ी सीधी-सादी लड़की से विवाह कर लेता है। महरुख अपने उसी गाँव में हमेशा के लिए रच-बस जाती है।

लेखिका इस उपन्यास को नारी संवेदना के आधुनिक परिधान में लपेटकर देखने की कोशिश की हैं। यहाँ एक तरफ परंपरागत परिवेश का घना जंगल है तो दूसरी तरफ उस जंगल में पाशविक वृत्ति लिए अवसरवादी रफ़त मियाँ जैसे मनसूबे भी है। ये दोनो सोच एवं संवेदना कहीं कथा-नायिका को जंगल में बने रहने के लिए बाध्य करती हैं तो कहीं वह उनको छाँटकर अपने मुक्ति का मार्ग बनाना चाहती है। आज की नारी की असमर्थता, भ्राँतियाँ, मानसिक द्वंद्व, व्यक्तिगत असंतुलन आदि का नासिरा शर्मा कुशल अंकन इस उपन्यास में नियोजित करती है।

यह उपन्यास न केवल नारी स्वतंत्रता की सामूहिक चेतना का विकास करता है। बल्कि नारी के लिए तीसरा घर प्रदान करता है जिसे देखकर उन तमाम महिलाओं को हौंशला मिलेगा जो इस डर में बैठी हैं कि यदि मैं तथाकथित पुरुष समाज की बात नही मानी तो हमारा क्या होगा ? इस डर ने उनके सपनों को आकार लेने से पहले ही दफना देने में तब्दील हो जाता है । लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से

उन तमाम बेटियों के डर को उनके जेहन से बाहर करने का काम किया है जो अपने लिए जीना चाहती हैं और अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहती हैं।

डॉ. रोहिताश्व कहते हैं-

"नासिरा शर्मा संभवतः एक ऐसी रचनाकार हैं जो मुस्लिम समाज की नारियों के अर्न्तमन को भी सूक्ष्मता से रेखांकित करती हैं। उनकी बोली-बाली ने अभिव्यक्ति में और हिन्दू समाज की जद्दोजहद झेलती संवेदनशील और कैरियरिस्ट नारियों के जीवनादेश की अनेक परतों को प्रतिबिम्बित ही नही बल्कि युगीन परिवेश के बदलते माहौल को रेखांकित करने में समर्थ है। प्रसंगानुसार वृतान्त शैली, विवेचन शैली, संवाद शैली, आत्मालोचन, फ्लैशबैक शैली को मनोविश्लेषण की गहराईयों से पैदा करने वाली वह हमारे दौर की एक समर्थ-हस्ताक्षर हैं । नारी-विमर्श के अनुक्रमे प्रसंगों को प्रस्तुत करने में वह एक कामयाब कथाकार है।"102

नारी-संवेदना के बदलते वजूद का दस्तावेज 'ठीकरे की मंगनी' उपन्यास समाज के सामने कुछ सवालों को लेकर प्रश्नवाचक मुद्रा में खड़ा होता है। एक तरफ वह औरत के लिए उसके अपने घर की माँग करता है तो दूसरी तरफ औरत और मर्द के बीच जज्बाती रिश्ता होने के कारण बराबरी की मांग भी करता करता है।

जहाँ एक तरफ समाज की ऐसी दशा है कि, जो लड़का पैदा भी नही हुआ है उसके लिए दुल्हन पहले से ही बना ली जाती है। औरत के भाग्य का फैसला उसके जीवन की जरूरतों और खुशियों को बिना जाने पहले ही 'ठीकरे की मंगनी' में चाँदी का सिक्का उछाल कर कर लिया जाता है। ऐसी रुढ़िवादी सोच को तोड़ने का काम महरूख ने किया और उपन्यास की समाप्ति पर वह अपने निजी पहचान के साथ नारी संवेदना के उदाक्त तत्वों को बड़ी परिपकवता के साथ प्रस्तुत करती है। वह अपनी परिपक्व शैली में माँ को समझाती नजर आती है- "महरुख अपने विस्तर पर लेटी चुपचाप मम्मी की बेकली देख रही थी कि औरत की खुशकिस्मती और

बदकिस्मती के कितने बंधे-बंधाए ढर्रे हैं। बरसो से चली आ रही यह सोच कब बदलेगी? कब औरत की कीमत ठीकरों और कौड़ियों से नापना बंद होगा ? कब उसे इंसान समझ कर उसकी बोलियाँ लगनी बंद होंगी ? कब उसे मर्दों के सहारे के बिना दुनिया जीतते देखना पसन्द करेगी?"

कब उसे अपनी तरह जीने की आजादी मिलेगी आखिर कब ?"103

नासिरा शार्मा द्वारा लिखित यह उपन्यास लगभग अपने प्रकाशन वर्ष से आज के समय में दो-दशक के ऊपर-होने को है किन्तु औरत और मर्द के बीच टूटते रिश्तों दास्तान आज भी उतने ही संगीन हैं जितने तब थे। अत: यह उपन्यास पढ़े-लिखे युवा लोगों के लिए आज भी प्रासंगिक है और प्रेरणादायक भी। हालांकि स्त्री विमर्श को सामने रखकर औरत के पक्ष में बात करने वाली अनेक लेखिकाएँ और आलोचक नासिरा शर्मा की निंदा करते हैं, इसमें उनका दोष भी नहीं है क्योंकि वे नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श ढूढ़ते है। जबकि नासिरा नारी-संवेदना की लेखिका है। उनकी दृष्टि भन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती जैसी लेखिकाओं के ज्यादा निकट की है। वेदप्रकाश लिखते है -

"जीवन की अंत: संबंद्धता की उपेक्षा किसी भी प्रकार के लेखन की बहुत बड़ी सीमा हो सकती है। प्रभावशाली स्त्रीवादी और दलित लेखन वह है जिसमें जीवन की जटिलता और परस्पर संबंद्धता की अभिव्यक्ति होती है। बुद्धिजीवी व लेखक, सक्रिय राजनीति के नकारात्म पहलुओं का चाहे जितना उल्लेख करें लेकिन सक्रिय राजनीति की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि वह अधिक समावेशी - सबको साथ लेकर चलने वाली होती है। इस समावेशिता से लेखन को समृद्ध होना चाहिए, स्त्रीवादी एवं दलित लेखन को भी।"[104]

वस्तुत: नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास के माध्यम से महरुख जैसी अद्वितीय एवं मौलिक चरित्र हिन्दी साहित्य को दिया है। महरुख का जीवन उन स्त्रीयों के सोच

संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी मुक्ति को अकेले में न ढूँढकर समाज के दबे, कुचले, निम्न वर्गीय संघर्षरत, शोषित पात्रों से जोड़कर नारी-संवेदना के प्रश्न को व्यापक फलक प्रदान करती है। काफी समय बाद चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'आँवा' की 'नमिता पाण्डे' महरुख की वंशज पात्र है यह स्त्री विमर्श का व्यापक समावेशी रूप है इसलिए अनुकरणीय भी।

उपन्यास के संदर्भ में -डॉ०शशिकला त्रिपाठी कहती हैं-

"सदियों से समाज में विवाह संस्था के जरिए, स्त्री की दो भूमिका ही निर्धारित की गई है। वह है 'सेक्स' और 'मातृत्व' | वर्ग और वर्ण की अहमियत उसके लिए कुछ खास नहीं। परिणामत: उसकी सीमाएँ निर्धारित कर परिवार ही नही समाज में भी पुरुष अपना वर्चस्व कायम कर लेता है। मगर चोट खायी 'महरुख' इन दोनो भूमिकाओं को अस्वीकारती है। वैयक्तिक और पारिवारिक इन मुद्दो को अनदेखा करते हुए एक जिम्मेदार, सामाजिक व्यक्ति बनने का उपक्रम करती है। दलित, मजलूमों के आँसू पोछने और उनके पैरों को ताकत देने के लिए महानगर, कस्बा को छोड़कर गाँव में जा बसती है । मार्क्सवाद के किताबों से निकालकर जमीन से जोड़ती है। अपने इसी जुनून में वह एक असाधारण औरत बन जाती है। उसका जनवादी रुझान उसे गाँव में लोकप्रिय बनाता है। उसके प्रति आत्मीयता और सम्मान रखने वालों की संख्या बढ़ती जाती है।"[105]

इस्लाम में पुर्नजन्म का विधान नहीं है। मगर नासिरा शर्मा का विश्वास है कि इंसान दो बार जन्म लेता है। पहली बार माँ के गर्भ से और दूसरी बार हालात की मार से हालात की मार ने ही ठोंक-पीटकर महरुख को सशक्त एवं मजबूत बनाया है। अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाया है, खुद्दार और समझदार बनाया है।

महरुख के बारे में नासिरा जी कहती है कि-

"मगर इस हकीकत को भी जानती थी कि सारी रुकावटें जहनी तौर से तोड़ती हैं। वह जितना बड़ा इंसान बनाना चाहे मगर, रहेगी तो वह इसी मर्दाना दुनियां में जहाँ औरतों को देखने का अंदाज सिर्फ एक है।......जँहा प्रेमिका को रखेल से हटकर कोई बराबर का दर्जा देने को तैयार नही ।"[106]

बटौर महरुख - हमें मर्द नही बनना है और नही मर्द को औरत बनाना है। एक दूसरे की लबादा पहनने की यह ललक ही मुसीबत बन रही है। जरूरत है, अपनी-अपनी जगह खड़े होकर अपने-आपको समझने और दूसरे को समझाने की।

डॉ.शशिकला त्रिपाठी के अनुसार- "अन्ततः 'ठीकरे की मंगनी में यथास्थितिवाद का अस्वीकार है, परंपरा का विरोध है किन्तु क्रान्तिकारी परिवर्तन नही... महरुख परंपरा का आधुनिकता में सामंजस्य बिठाते हुए लगती है ।"[107]

इस प्रकार लेखिका ने इस उपन्यास में नारी संवेदना को मुखर किया है, और उसे परंपरा और आधुनिकता की लीक से उठाकर एक सामन्जस्यपूर्ण निजी विचार की औरत के रूप मे रेखांकित करने की सफल कोशिश की है।

विवेच्य लेखिका नासिरा शर्मा एक स्त्री होने के नाते भी और साहित्य चितेरी के नाते भी नारी मन के अतल गहराईयों में उतरकर उनकी संवेदनाओं को जगाने और अपने साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से स्त्री के पक्ष में आवाज बुलंद करने की सफल कोशिश करती है। लेखिका के विवेच्य तीनो उपन्यास - सात नदियाँ एक समन्दर, शाल्मली, ठीकरे की मंगनी, नायिका प्रधान उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सकता है। उपरोक्त तीनो उपन्यास स्त्री संवेदना से अनुप्राणित है। लेखिका के अन्य उपन्यास नारी संवेदना परक न होकर समाज के अन्य मुद्दों की कथाभूमि का आधार बने हैं, अत : यहाँ पर उनका विवेचन नहीं दिया गया है। इनके अन्य उपन्यासों की विषयवस्तु का परिचयात्मक विवरण पहले ही अध्याय में दे दिया गया है।

निष्कर्ष :-

निषर्कषतः नासिरा शर्मा के उपन्यासों में नारी जीवन की स्थिति का जो चित्र खींचा गया है। वह किसी गाँव की अनपढ़ औरत की कथा न होकर पढ़ी-लिखी आर्थिक रूप सें स्वतंत्र महिला का है। लेखिका के उपन्यासों की नारी पात्र बुनियादी जरूरतों को लेकर अपने हक की लड़ाई लड़ती नजर आती हैं, उनकी संवेदना की पृष्ठिभूमि आत्मरक्षा, स्वाभिमान, बराबरी का हक, खुद के लिए सम्मान आदि जैसी संवेदनाओं से प्रारंभ होती है और सर्वांगीण रुप से स्त्रीत्व की मर्यादा को पल्लवित एवं पुष्पित करती है।

'सात नदियाँ एक समंदर' की सातों नायिका है- (मलीहा, सूसन अख्तर, महनाज, सनोवर, तैय्यबा, परी) जिन्होंने स्वतंत्रता एवं सम्मान के साथ तेहरान विश्वविद्यालय से अपनी पढ़ाई-लिखाई सम्पन्न करके फिर स्वेच्छया ईरानी क्रान्ति में विभिन्न किरदारों के माध्यम से अपना योगदान दिया। उसकी अगली कड़ी के रूप में यदि हम 'शाल्मली' उपन्यास को देखें तो साफ पता चलता है कि 'शाल्मली' आर्थिक रूप से स्वतंत्र महिला है। वह चाहे तो नरेश से संबंध विच्छेद करके भी अपने जीवन को एक नया आयाम दे सकती है। अपना तीसरा घर बना सकती हैं, जो पिता और पति से बिल्कुल अलग हो किन्तु ऐसा होता तो उपन्यास एक सामान्य कोटि का कथा वाहक मात्र रह जाता । हृदय परिवर्तन करके पाठक के मन की संवेदना को जागृत करने में असमर्थ होता फिर उपन्यास की संवेदना का साधारणीकरण उतने प्रभावी ढंग से शायद न हो पाता जितना सम्मान शाल्मली को आज प्राप्त हुआ है। परंपरा से प्राप्त संस्कार, शिक्षा से बदली मानसिकता, आर्थिक स्वतंत्रता से प्राप्त धैर्य, तीनो मिलकर उसे एक परिपक्व, सुलझी हुई, भारतीय संस्कृति की साधक एवं रक्षम नारी के पद पर आसीन कर देते है। जहाँ वह अपना इस्तेमाल भी नही होने देती और सम्बन्ध विच्छेद भी नही करती । अत: कहा जा सकता है कि 'शाल्मली' उपन्यास की

नायिका बदलते हुए भारतीय संस्कृति का वह बीज है जो पुरातनता के साथ आधुनिकता के परिवेश से अनुप्राणित होकर भारतीय गरिमा की चिरवाहक स्त्री के रूप में प्रतिष्ठित हुई है।

जब सभ्यता और संस्कृति व्यक्ति के स्वाभिमान को ठेस पहुंचाने का कार्य करे तो उस समय व्यक्ति को अपने स्वाभिमान की रक्षा करनी चाहिए।

नासिरा शर्मा का तीसरा उपन्यास जो नारी संवेदना के बहुआयामी दृष्टिकोणों को अपने कथावस्तु में समेटे हुए हैं, वह है 'ठीकरे की मंगनी' इसकी पात्र 'महरुख' 'शाल्मली' से एक कदम आगे बढ़ते हुए अपनी आत्मरक्षा के लिए, अपने सम्मान की रक्षा के लिए शोहरत और दौलत दोनों को ठुकरा देती है और चुनती है, एक थरथराता हुआ सत्य जिसमें पिता एवं पति के अलावा सारे दुनिया के रिश्ते हैं। वह समाज के निम्न वर्ग, निम्नमध्य वर्ग, किसानों एवं श्रमिकों के लिए अपने निजी जीवन के तमाम सुख सुविधाओं को तिलांजलि दे देती है। किताबों में लिखे साम्यवादी सिद्धातों को महरुख जमीनी धरातल पर लाकर उसी में अपना चैन, सुख ढूँढ़ती है।

अतः कहा जा सकता है कि नासिरा शर्मा के तमाम उपन्यास जो स्त्री संवेदना को अपने में समेटे हुए हैं, समाज की आधी आबादी का ऐसा स्वतंत्र, यथार्थवादी घटनाऐ है जिसके पात्र या तो अभी जिन्दा हैं या फिर किसी न किसी माध्यम से आज भी समाज को एक नई चेतना की राह दिखाने में संलग्न है। स्त्री संवेदना का जितना जागृत एवं गर्मजोशी भरा रूप हमें नासिरा शर्मा के इन उपन्यासों में देखने को मिला है, उतना अन्यत्र नही प्राप्त होता है, इसलिए कहा जा सकता है कि नासिरा शर्मा के उपन्यास नारी संवेदना के विविध आयामों के वाहक है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. प्रताप नारायण, टंडन हिन्दी उपन्यास कला, पृष्ठ-1-2,
2. डॉ.रायगुलाब, काव्य के रूप, पृष्ठ -156,
3. डॉ. श्याम सुन्दर दास, साहित्या-लोचन, पृष्ठ -143
4. प्रेमचन्द, साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ-54
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य का साथी, पृष्ठ - 83
6. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, पृष्ठ -105,
7. नासिरा शर्मा, सात नदियाँ एक समुन्दर, पृष्ठ-भूमिका के (दोशब्द) से
8. नासिरा शर्मा, सात नदियाँ एक समुन्दर, पृष्ठ -10
9. वही, पृष्ठ - 15
10. वही, पृष्ठ - 83
11. वही, पृष्ठ - 58
12. वही
13. वही
14. मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, पृष्ठ - 162
15. नासिरा शर्मा, सात नदियाँ एक समंदर, पृष्ठ -59
16. वही
17. वही पृष्ठ - 60
18. वहीं, पृष्ठ - 56
19. वही, पृष्ठ 57
20. वही
21. वही
22. वही

23. वही पृष्ठ -128

24. जयशंकर प्रसाद, कामायनी- (लज्जा सर्ग), पृष्ठ - 33,

25. शर्मा नासिरा, सात नदियाँ एक समुन्दर, पृष्ठ - 265

26. यादव राजेन्द्र, मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, पृष्ठ -163,

27. वही

28. जयशंकर प्रसाद, कामापनी-(आशा सर्ग), पृष्ठ - 11

29. शर्मा नासिरा, सात नदियाँ एक समुन्दर, पृष्ठ - 265

30. वही

31. वही

32. ललित सं.-शुक्ल, नासिरा शर्मा शब्द और संवेदना की मनोभूमि, पृष्ठ -22,

33. महुआ माजी, मैं बोरिशाईल्ला, पृष्ठ-354

34. शर्मा नासिरा सात नदियाँ एक समुन्दर, पृष्ठ - 165

35. वही, पृष्ठ-175

36. शर्मा नासिरा शाल्मली, पृष्ठ-11

37. वही, पृष्ठ -10

38. वही, पृष्ठ -13

39. वही, पृष्ठ - 25

40. वही, पृष्ठ - 24

41. वही

42. वही

43. वही

44. वही, पृष्ठ -26

45. वही, पृष्ठ - 47

46. शर्मा नासिरा, औरत के लिए औरत, पृष्ठ-127

47. पाण्डे मृणाल, स्त्री: देह की राजनीति से देश की राजनीतिक, पृष्ठ-15

48. शर्मा नासिरा, शाल्मली, पृष्ठ - 56

49. वही

50. वही

51. वही

52. वही, पृष्ठ -67

53. वही- पृष्ठ -75

54. वही, पृष्ठ - 88

55. वही, पृष्ठ - 121

56. शर्मा नासिरा, औरत के लिए औरत, पृष्ट-68

57. वही

58. शर्मा नासिरा, शाल्मली, पृष्ट - 127

59. वही

60. वही, पृष्ठ - 128

61. वही, पृष्ठ - 127

62. वही, पृष्ठ -146

63. वही

64. वही, पृष्ठ - 161

65. वही, पृष्ठ - 162

66. वही, पृष्ठ - 164

67. वही, पृष्ठ 165

68. वही, पृष्ठ 165-166

69. वही, पृष्ठ - 166

70. वही

71. कथाक्रम (पत्रिका), पृष्ठ -16, अंक - जुलाई सितम्बर - 2007

72. नासिरा शर्मा, शाल्मली उपन्यास' के (फ्लैप से)

73. वही

74. नासिरा शर्मा, ठीकरे की मंगनी, पृष्ठ- उपन्यास के फ़्लैप

75. वही, पृष्ठ फ़्लैप से

76. वही, पृष्ठ -(कथन वाक्य)

77. वही, पृष्ठ-(कथन वाक्य)

78. वही, पृष्ठ-18

79. वही, पृष्ठ-19

80. वही, पृष्ठ- 21

81. वही,

82. वही, पृष्ठ-22

83. वही, पृष्ठ-23

84. वही, पृष्ठ-23

85. वही

86. वही, पृष्ठ-26

87. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, पृष्ठ-119

88. नासिरा शर्मा, ठीकरेन की मांगनी, पृष्ठ- 22

89.वही, पृष्ठ-33

90.वही, पृष्ठ-49

91.वही, पृष्ठ-50

92.वही, पृष्ठ-61

93.वही, पृष्ठ-136

94.वही, पृष्ठ-125

95.वही, पृष्ठ-125

96.वही, पृष्ठ-125-126

97.वही, पृष्ठ-126

98.वही, पृष्ठ-126

99.वही, पृष्ठ-127

100. वही, पृष्ठ-131

101. वही, पृष्ठ-133

102. डॉ.अमरीश सिन्हा, बोगदे से बाहर, (नासिरा शर्मा के कथा साहित्य मे स्त्री विमर्श)